UNIVERSAL
LIBRARY
OU_186435
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. Accession No.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

एटम

हमारे जीवन में

एटम

हमारे जीवन में

हमारे जीवन में एटम (अणु) के विविध उपयोगों का सुगम भाषा में जन-साधारण के लिए दिग्दर्शन

•

राजपाल एण्ड सन्ज़-दिल्ली

Hindi Translation of ATOMS TODAY AND TOMORROW, by Margaret O. Hyde, published by Whittlesey House, McGraw-Hill Book Co. Inc. New York.
Copyright : Margaret O. Hyde and Clifford N. Geary.

अनुवादक : **बाल कृष्ण, एम० ए०**

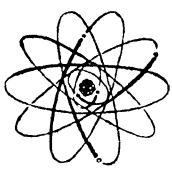

Checked 1963

मूल-लेखिका :
मार्गरेट ओ० हाइड

●

Checked 1969

चित्रकार
क्लिफ़र्ड ऐन० गीयरी

●

मूल्य
तीन रुपए

●

मुद्रक
युगान्तर प्रेस
डफ़रिन पुल, दिल्ली

विषय-सूची

१.	गेइगर-काउण्टर यंत्र द्वारा खोज ...	१
२.	अणु-ऊर्जा है क्या ? ...	१४
३.	अणु का विदारण ...	२३
४.	एक रहस्यपूर्ण भट्टी ...	३८
५.	सुरक्षित द्वारों के पीछे यूरेनियम ...	५१
६.	रेडियो-सक्रियता से खतरा और उससे बचाव	५९
७.	डाक्टर और अणु ...	८०
८.	अणु और कृषि ...	११३
९.	अणु के विविध उपयोग ...	१३३
१०.	अणुओं से बिजली का उत्पादन ...	१४७
११.	अणु और यातायात ...	१५७
१२.	अणु और आप ...	१७५

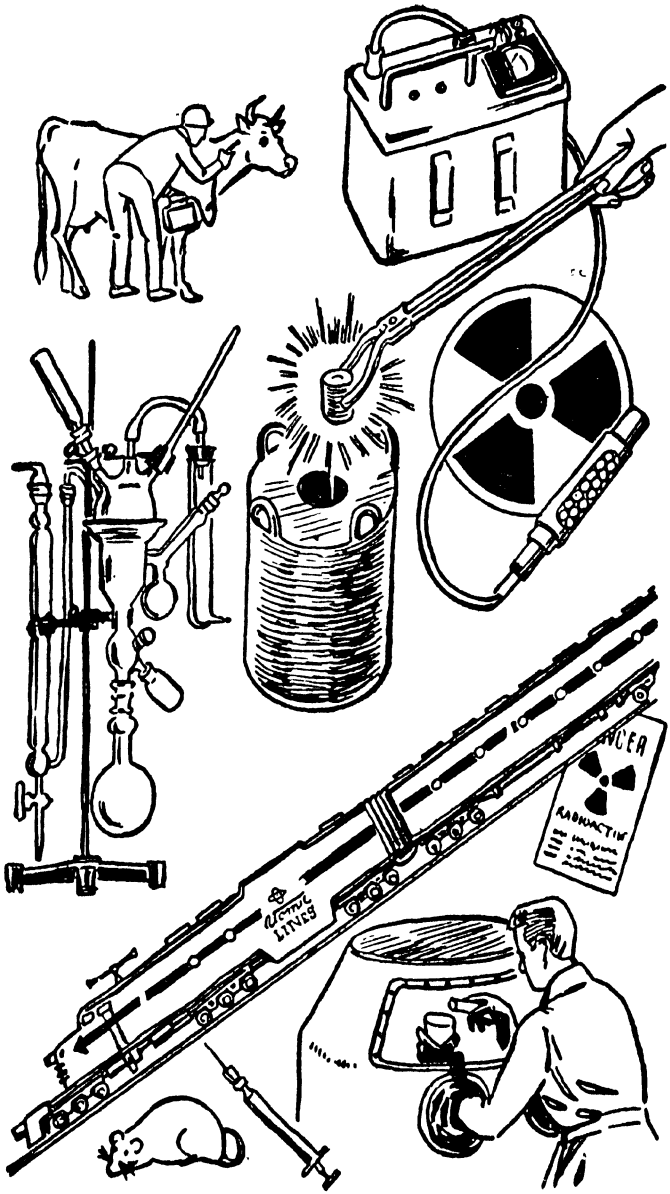
RADIOACTIVE

: १ :

गेइगर-काउण्टर यंत्र द्वारा खोज

अणु-ऊर्जा जहाँ एक ओर मानव-जाति की दासी बनकर उसकी असीम सेवा कर सकती है वहाँ, दूसरी ओर, वह सारे संसार का विध्वंस भी कर सकती है। अणु-ऊर्जा के उत्पादन, विकास और उपयोग के प्रश्नों पर आज वैज्ञानिक जगत अपना ध्यान लगा रहा है, और भविष्य में उसे उत्तरोत्तर इस ओर अधिक ध्यान देना पड़ेगा। इन प्रश्नों का हम क्या हल निकालते हैं—इस पर मानव-समाज और उसकी सभ्यता का भविष्य निर्भर करता है।

यदि कोई व्यक्ति अणु-ऊर्जा के आधार-भूत सिद्धान्तों को समझना चाहे तो उसके लिये विज्ञान-विशारद होना आवश्यक नहीं है। वे विज्ञान के उन अनेक सिद्धान्तों से कठिन नहीं हैं जिन्हें आज बहुत से लोग विज्ञान-वेत्ता न होते हुए भी अच्छी तरह समझते हैं। हाँ, अणु-सम्बन्धी कुछ शब्दावलि अवश्य नई लगेगी। किन्तु भविष्य में समाचार-पत्रों में इन शब्दों का प्रयोग उत्तरोत्तर बढ़ता जाएगा, इसलिये निकट भविष्य में निस्सन्देह साधारण लोग भी इनसे परिचित हो जाएँगे।

आज अणु-ऊर्जा की सहायता से डाक्टर लोग अनेक खतरनाक रोगों का इलाज करने में समर्थ हो रहे हैं। कृषक अणु-ऊर्जा सम्बन्धी ज्ञान की कृपा से कम खर्च से अधिक फसल उगा रहे हैं। उद्योग-धन्धों में भी अणु-ऊर्जा का सैंकड़ों तरह से उपयोग हो रहा है, जिसके फलस्वरूप अनेकों वस्तुओं की कम दामों में, और साथ ही अधिक सुन्दर रूप में, उपलब्धि हो रही है। केवल इतना ही नहीं, वरन् अणु-ऊर्जा का प्रयोग अब डुबकनी-नावों (सब-मैरीन) में भी होने लगा है।

हो सकता है कि निकट भविष्य में हम अपने घरों में रोशनी करने के लिये, घड़ियों को चलाने के लिये, तथा अन्य अनेक छोटे-बड़े कामों में अणु-ऊर्जा का उपयोग करने लगें। अणु-ऊर्जा केवलमात्र आपके देश की सुरक्षा ही नहीं करेगी, वरन् जन-कल्याण के न जाने कितने काम कर सकेगी।

अमरीका के राष्ट्रपति ने ८ दिसम्बर, सन् १९५३ को अपने देश के सामने एक योजना रखी। इसके अनुसार अमरीका अणु-ऊर्जा के शान्ति-पूर्ण प्रयोगों के लिये अन्य राष्ट्रों

से सहयोग कर सकता है। उन्होंने राष्ट्र-संघ के सामने एक भाषण भी दिया जिसका साराँश यह था कि "संयुक्त-राष्ट्र अमरीका अणु-ऊर्जा की गहन समस्या को सुलझाने के लिए दृढ़-प्रतिज्ञ है। हम वह मार्ग ढूंढ़ निकालने के लिये पूर्णतया कटिबद्ध हैं जिसके द्वारा मनुष्य का यह चमत्कार-पूर्ण आविष्कार उसके नाश के लिये नहीं वरन् उसकी उन्नति के लिये काम में लाया जा सकेगा।"

अमरीका की अणु-ऊर्जा-सम्बन्धी योजना आज संसार की सबसे बड़ी औद्योगिक योजना है। इस उद्योग में सबसे अधिक काम में आने वाला कच्चा माल यूरेनियम नामक विख्यात धातु है। जिस तरह लोग पहले सोने की खानें ढूंढ़ने में लगे रहते थे, उसी तरह आज अनेक अन्वेषक 'गेइगर काउण्टर' (Geiger Counter) नामक यंत्र की सहायता से यूरेनियम की खानों का पता लगाने में व्यस्त हैं।

यूरेनियम सारे संसार में लगभग हर जगह, थोड़ी-बहुत मात्रा में, प्राप्य है। यदि आप किसी भी स्थान पर एक वर्ग मील धरती की मिट्टी को १२ इंच गहराई तक खोदें तो उस मिट्टी में ३ टन यूरेनियम मौजूद होगा। इस यूरेनियम से आप १/२८ औंस रेडियम प्राप्त कर सकते हैं।

कई बार यूरेनियम, रेडियम तथा अन्य अणु-सक्रिय धातुएँ चट्टानों में तथा उस कंकरीट में भी पाई जाती हैं जो आपके मकान में लगी हुई है। पिछले दिनों फ़िलैडलफ़िया में एक व्यक्ति के मकान में लगे हुए एक पत्थर में गेइगर काउण्टर यंत्र द्वारा यूरेनियम की मौजूदगी का पता लगा। इसी तरह

वाशिंगटन नगर में जार्ज वाशिंगटन-स्मारक-भवन में पत्थरों का एक विशेष ब्लाक काफी अणु-सक्रिय है।

किन्तु इस प्रकार मिलने वाली अणु-सक्रियता इतनी हल्की होती है कि उससे कोई खतरा नहीं होता। और इनमें अणु-सक्रिय पदार्थ इतनी थोड़ी, बल्कि नगण्य, मात्रा में होता है कि उसे निकालने से कोई लाभ नहीं हो सकता।

कहीं-कहीं कुछ कच्ची धातुओं, जैसे कार्नोटाइट तथा पिचब्लेंड आदि में यूरेनियम काफी मात्रा में विद्यमान होता है। उन धातुओं को खानों में से निकालकर उनमें से यूरेनियम धातु को अच्छी मात्रा में निकाला जा सकता है।

अमरीका में आजकल किस तरह इस धातु की खोज की जा रही है, आइये, इसकी एक झांकी हम आपको दिखलाएँ।

अमरीका के कोलोरेडो, न्यू-मैक्सीको तथा एरीज़ोना प्रान्तों के पठारों तथा पहाड़ी प्रदेशों में सैंकड़ों-हज़ारों अन्वेषक इस आशा से नित्य-प्रति घूमते रहते हैं कि हो सकता है उन्हें यह मूल्यवान् धातु कहीं उपलब्ध हो जाए और वे उसकी कृपा से सहसा धनवान बन जाएँ। आज से लाखों-करोड़ों वर्ष पहले यूरेनियम धातु ने नदियों और झीलों के तल में पड़े हुए लाल रंग के बलुवा-पत्थर पर पीले रंग के निशान छोड़ दिये थे। किन्तु बाद में ये नदियाँ और झीलें लुप्त हो गईं और जिन प्रान्तों में वे नदियाँ बहती थीं वे सैंकड़ों फुट ऊँचे पठारों में परिणत हो गए और वहाँ पानी दुष्प्राप्य हो गया। इन्हीं प्रान्तों में अब स्थान-स्थान पर पीले तथा हरे रंग की कार्नोटाइट धातु न्यूनाधिक मात्रा में मिलती है। इन खानों की खोज में व्यक्तिगत रूप से सैंकड़ों लोग तथा खनिज-कम्पनियाँ व सरकारी कर्मचारी निरन्तर लगे रहते हैं।

मान लीजिये कोई अन्वेषक यूरेनियम की खोज में कोलोरेडो पठार पर चढ़ता है। वह सम्भवतः कार्नोटाइट धातु को (जिसमें यूरेनियम विद्यमान रहता है), खोज निकालता है। किन्तु केवल रंग से इस बात का निश्चय नहीं हो सकता। इसके लिये गेइगर-काउण्टर यंत्र से सहायता लेना आवश्यक है। प्रत्येक अन्वेषक इस यंत्र को अपने साथ रखता है। उसे वह सम्भावित धातु के टुकड़े पर रखकर जांच करता है। यदि यंत्र में टिक शब्द हो गया और उसकी सूई डायल पर घूम गई तो समझ लीजिये कि उसका भाग्य चमक उठा।

अन्वेषक कई-कई दिन पगडंडियों और कच्ची सड़कों पर

चलते रहते हैं और पहाड़ी घाटियों के ऊपर चढ़ते रहते हैं। सवेरे के समय छोटे-छोटे सरकारी वायुयान उड़ान करके उन स्थानों का पता लगाने का प्रयास करते रहते हैं जहाँ यूरेनियम-मिश्रित धातु काफी मात्रा में उपलब्ध हो सके। उन वायुयानों में एक विशेष यंत्र लगा रहता है जिसे सिंटिलोमीटर (Scintillometer) कहते हैं। यदि नीचे, धरती में, कहीं यूरेनियम-मिश्रित धातु मौजूद है तो सिंटिलोमीटर में प्रकाश हो जाता है। यदि किसी प्रान्त पर उड़ते हुए वायुयान में सिंटिलोमीटर यंत्र पर प्रकाश फैल जाए तो उस प्रान्त का मानचित्र बना लिया जाता है, और उसे 'एटौमिक-इनर्जी कमीशन' के कार्यालय में भेज दिया जाता है। कमीशन के कार्यालय से मानचित्र की प्रतिलिपियाँ अन्वेषकों की सहायता के लिये उनके पास भेज दी जाती हैं।

टूटती-गिरती चट्टानों पर अन्वेषक चढ़ता जाता है। वह भूख-प्यास से विह्वल है, हारा-थका हुआ है, गर्मी से परेशान है। धातु की खोज का काम कोई सरल काम नहीं है, चाहे मानचित्र भी उसके पास हो। हो सकता है कि गर्मी लगने से उसकी मृत्यु हो जाए, या कोई साँप उसे काट खाए। किन्तु फिर भी वह साहस नहीं छोड़ता। साहस और भाग्य के सहारे सम्भव है वह धरती में से गड़ा हुआ मूल्यवान् 'धन' प्राप्त करने में सफल हो जाए और उसके पौ-बारह हो जाएँ। साथ ही सरकार को तो उस अमूल्य धातु की, जिसकी आज उसे बहुत आवश्यकता है, कुछ-न-कुछ मात्रा मिल ही जाएगी।

दिन भर इधर-उधर खाक छानने के बाद अन्वेषक रात के समय किसी निकटस्थ गाँव में लौटता है। उदाहरण के तौर पर कोलोरेडो पठार वाले अन्वेषक को लीजिये। वह रात के समय 'ग्रांड-जंकशन' नामक स्थान पर लौट आता है। यह स्थान कुछ समय पहले किसानों की एक छोटी-सी बस्ती थी। वहाँ की दुकानों में जहाँ पहले फावड़े और हल और कृषि-सम्बन्धी अन्य छोटे-मोटे यंत्र मिलते थे वहाँ अब उनमें, उन्हीं कृषि-यंत्रों के साथ-साथ, यूरेनियम-मिश्रित धातुओं का पता लगाने वाले विद्युतीय यंत्र भी बिकते हैं। पहले इस छोटी-सी बस्ती की आय का मुख्य साधन नाशपातियाँ थीं। अब यूरेनियम से इस गाँव की आय पहले से तीन-गुणा हो गई है।

अगले दिन सवेरे वह फिर खोज के लिये अपना भ्रमण प्रारम्भ करता है। कितने ही और भी अन्वेषक पठार पर जा रहे हैं। कच्ची धातु से भरे हुए मोटर-ठेले कच्ची सड़कों पर

चल रहे हैं। लगता है कि जिन खानों से ये ठेले धातु ला रहे हैं वे शायद कहीं निकट ही होंगी। किन्तु ये ठेले ऊँची-नीची, टेढ़ी-मेढ़ी, पहाड़ी सड़कों पर सम्भवतः ३० मील की दूरी तय करके चले आ रहे हैं।

मार्ग में आपको कितनी ही छोटी-छोटी गुफाएँ-सी मिलती हैं जिनमें लोग भारी-भारी हथौड़ों या कहीं-कहीं छोटे-छोटे फावड़ों से नरम-नरम कच्ची धातु के ढेले निकाल रहे हैं। कुछ लोग पहाड़ियों में छोटी-छोटी सुरंगें बनाकर उन्हें बारूद से उड़ा कर कई टन कच्ची धातु हर रोज़ निकाल लेते हैं—वह धातु जिसके अन्दर सोने से भी अधिक मूल्यवान दूसरी धातु, अर्थात् यूरेनियम, छुपी हुई है।

अन्वेषक किसी निर्जन पहाड़ी घाटी की दीवार के साथ-साथ जा रहा है। अचानक उसे चट्टानों में तेज़ पीली रंग की धारियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। उसका दिल बल्लियों उछलने लगता है। शायद उसका भाग्य चमक जाए। वह गेइगर-काउण्टर यंत्र लगाकर देखता है और उसमें टिक शब्द होते ही तथा सूई घूमते ही वह सरकारी कार्यालय में जाकर उस स्थान से कच्ची धातु निकालने का अपना अधिकार दर्ज करा लेता है।

कुछ दिनों के बाद उस नई खान से धातु निकालने का काम नियमित रूप से प्रारम्भ हो जाता है। बर्मे और ठंडे कम्प्रैस्सर को चलाने में पानी काफी मात्रा में चाहिए। हो सकता है कि नई खान के आस-पास मीलों तक पानी न मिलता हो। किंतु पानी तो चाहिए ही। इसलिये उसे मीलों दूर से

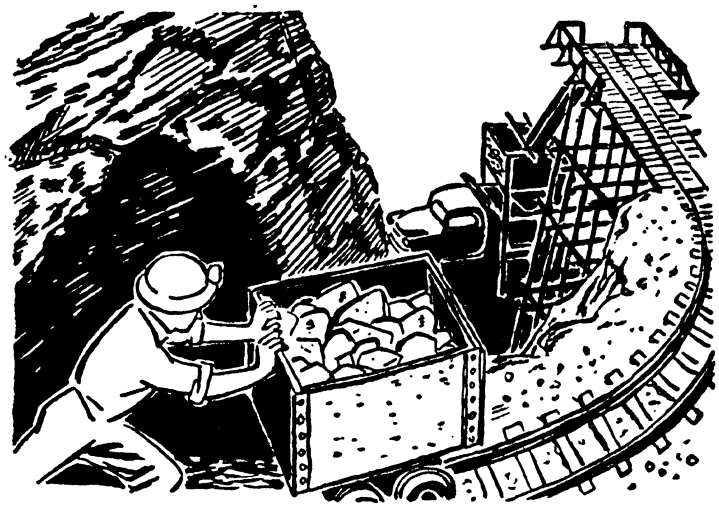

लाना पड़ता है। कच्ची धातु के नमूनों की जाँच करनी पड़ती है। यदि उसमें यूरेनियम की मात्रा काफी मिल जाए तो फिर कच्ची धातु को अधिक-से-अधिक मात्रा में वहाँ से निकालने का कार्य प्रारम्भ हो जाता है। शुरू-शुरू में तो थोड़ी-सी खुदाई करने पर थोड़ी-बहुत धातु उपलब्ध हो जाती है। फिर यदि धातु और आगे मिलती चली जाए तो भूमि को अधिक गहराई तक खोदना पड़ता है। कच्ची धातु को निकाल-निकाल कर निकटतम सरकारी गोदाम तक भेजना होता है। वहाँ उसे सरकार खरीद लेती है। कोई व्यक्ति सरकार के अतिरिक्त किसी अन्य को यह धातु न बेच सकता है, न किसी अन्य रूप में दे सकता है। किन्तु प्रत्येक अन्वेषक को विश्वास है कि उस का माल सरकारी गोदाम में पहुँचते ही बिक जाएगा और उसे उसका मूल्य भी उचित ही मिल जाएगा।

यूरेनियम की कच्ची धातु की खान 'क' स्थान में है जहाँ से धातु को खोद कर निकाला जाता है। फिर उसे 'ख' गाड़ियों में भरकर खान के द्वार 'ग' तक लाया जाता है। यहाँ धातु के डलों को ट्रकों में भर दिया जाता है जो उन्हें कारखाने तक ले जाते हैं।

जब किसी व्यक्ति का मोटर-ठेला सरकारी गोदाम में पहुँचता है तो उसे तोला जाता है और उसमें से नमूने लेकर उनकी परख करके यह पता लगाया जाता है कि उस ठेले के माल में कितनी मात्रा में यूरेनियम तथा अन्य मूल्यवान धातुएँ हैं। उसी के अनुसार माल के दाम दे दिये जाते हैं। साथ ही सरकार धातु को गोदाम तक लाने के खर्च का भी कुछ भाग अदा करती है। इसके अतिरिक्त नई खान वालों को कुछ और रुपया भी दिया जाता है, और खान को यदि अधिक गहराई तक खोदने की आवश्यकता हो तो उसके लिये विशेष भत्ता अलग दिया जाता है। कोई अन्वेषक चाहे कितनी ही दूर वाले तथा दुर्गम स्थान में खान का पता लगाए, सरकार अच्छे दाम देकर प्रत्येक अन्वेषक से धातु खरीदने के लिये सदा तत्पर रहती है।

सरकारी गोदामों में यूरेनियम-मिश्रित कच्ची धातुएं संग्रहीत हो गईं। अब आगे उनका ठीक उपयोग किया जाएगा —चाहे वह उपयोग युद्ध के सम्बन्ध में हो, अथवा शान्तिपूर्ण योजनाओं के सम्बन्ध में। इन शान्तिपूर्ण योजनाओं का विवरण आगे के अध्यायों में दिया जा रहा है।

उपरोक्त कच्ची धातु में से अणु-ऊर्जा निकालने के लिये उसे बहुत से प्रक्रमों में से गुजारना पड़ता है। सबसे पहले तो उसमें से मिट्टी, पत्थर तथा अन्य चीजें अलग करनी पड़ती हैं। कच्ची धातु में शुद्ध यूरेनियम धातु के कण इतने सूक्ष्म मिले हुए होते हैं कि कई बार तो वे केवल सूक्ष्म-दर्शी यंत्र (माइक्रोस्कोप) से ही देखे जा सकते हैं। कच्ची धातु को विशेष कारखानों में लाया जाता है जहां उसे कूट-पीसकर छाना जाता है। फिर उसे पकाया जाता है, धोया जाता है और अन्य कई प्रक्रमों में से गुजारा जाता है। इन सब प्रक्रमों के बाद उसकी मात्रा बहुत थोड़ी रह जाती है, किन्तु वह काफी शुद्ध हो जाती है। कई टन कच्ची धातु में से कुछ ही पौंड धातु इस समय शेष रह जाती है। यह धातु चमकदार पीले रंग की होती है। इसके बाद इस बची हुई धातु को फिर कई प्रक्रमों में से निकलना पड़ता है जिनके अन्त में सुरमई रंग का पाउडर प्राप्त होता है। यह यूरेनियम ऑक्साइड है। इस पाउडर को एक और कारखाने में भेज दिया जाता है जहाँ उसे और अधिक शुद्ध किया जाता है। इस शुद्धीकरण के बाद यह हरे रंग का लवण-पदार्थ बन जाता है। यह पदार्थ यूरेनियम और फ़्लोरीन (Fluorine) का मिश्रण है। कुछ और

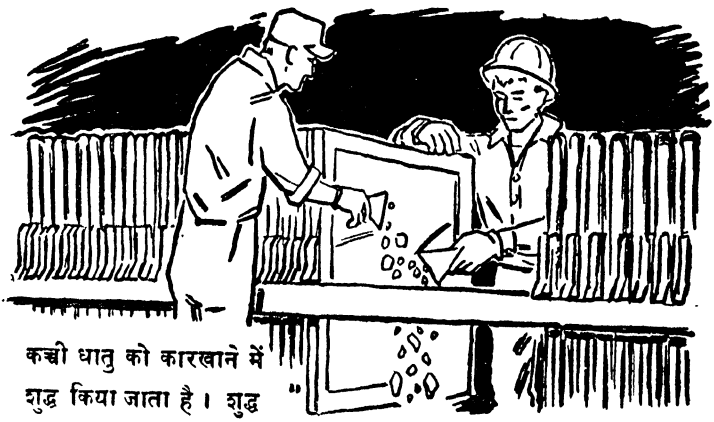

कच्ची धातु को कारखाने में शुद्ध किया जाता है। शुद्ध यूरेनियम का रंग पीला हो जाता है। शुद्ध धातु को 'यैलो केक' कहते हैं।

प्रक्रमों के बाद उक्त मिश्रण में से शुद्ध यूरेनियम निकलता है, जो चमकदार और भारी होता है। इसका रंग चाँदी की तरह सफेद होता है और यह फ़ौलाद से तनिक कम कठोर होता है। किन्तु इतने प्रक्रमों में से निकलने के बाद भी और इतना थोड़ा बच रहने पर भी अभी वह यूरेनियम प्राप्त नहीं हुआ जिसके अणुओं को विदीर्ण करके उन में से महान अणु-ऊर्जा प्राप्त हो सकती है।

इस शुद्ध यूरेनियम में भी बहुत थोड़ी मात्रा में वह मूल्यवान यूरेनियम होता है जिसे हम यूरेनियम २३५ कहते हैं और जिसमें से अणु-ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है।

सारा यूरेनियम एक जैसा नहीं होता, किन्तु भिन्न-भिन्न प्रकार के यूरेनियम में अन्तर इतना सूक्ष्म होता है कि यदि हम

उनके अणुओं को अलग-अलग देखें तो हमें साधारणतया उन का अन्तर ज्ञात नहीं हो सकता। किन्तु अणुओं को हम अलग-अलग करके तो देख ही नहीं सकते। ऐसा क्यों है—इसका उत्तर आपको अगला अध्याय पढ़कर मिल जाएगा जिसमें आप को 'अणु' के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त हो सकेगी।

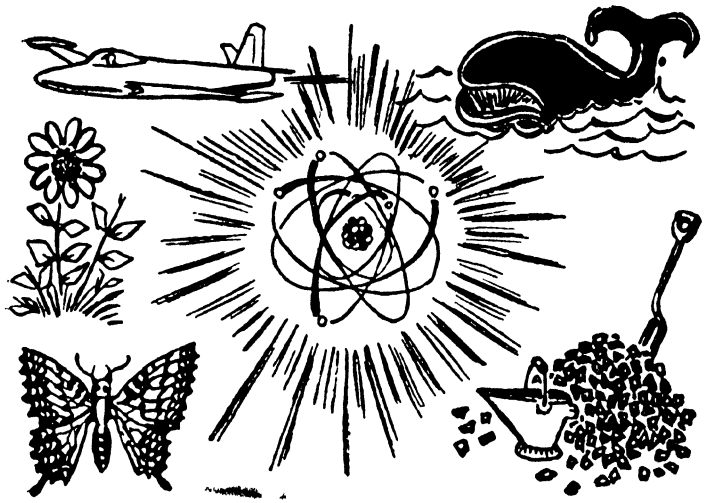

: २ :

अणु-ऊर्जा है क्या ?

मुट्ठी-भर अणु ले लीजिये। आप किसी भी वस्तु पर हाथ रखें, किसी भी वस्तु को हाथ में उठाएँ, या केवल अपनी मुट्ठी में हवा बन्द करलें (जो वहाँ पहले ही मौजूद है, इसलिये 'बन्द' करने की बात ही व्यर्थ है) तो समझ लीजिये कि आपकी मुट्ठी में करोड़ों अणु हैं। वास्तव में आप अणुओं से बने हुए संसार में रहते हैं जिसमें तितली के कोमल पंख भी अणुओं से मिल कर बने हैं और पहाड़ों की कठोर चट्टानें भी अणुओं से मिल-

कर बनी हैं। अणुओं से ही ग्लेशियर की बरफ बनी है और अणुओं से ही काले कोयले का और जैट्-वायुमान के चांदी जैसे सफेद पंखों का और समुद्र के नीले जल का निर्माण हुआ है। हमारी पृथ्वी के अन्दर और ऊपर जो कुछ भी है, केवल वही नहीं, वरन् चांद, सूरज तथा अन्य समस्त तारागण अणुओं से बने हुए हैं। करोड़ों-अरबों अणुओं के मिलने से हमारे-आपके शरीर का निर्माण होता है, तथा अन्य जो भी चराचर वस्तुएँ इस सृष्टि में विद्यमान हैं उन सब का निर्माण भी असंख्य अणुओं के मिलने से हुआ है।

अब आप अपनी मुट्ठी के अणुओं को देखें। आप चाहे कितनी भी आँखें गड़ाकर क्यों न देखें, आप एक भी अणु को आँख से नहीं देख सकेंगे, क्योंकि अणु इतना सूक्ष्म होता है कि

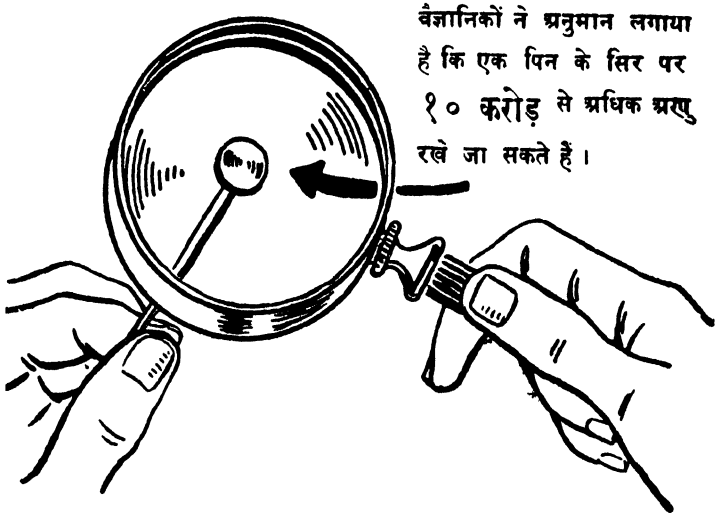

उसे काफी शक्तिशाली सूक्ष्मदर्शी यंत्र से भी नहीं देखा जा सकता। अणु कितने सूक्ष्म होते हैं इसका अनुमान आप निम्न-लिखित बातों से लगा सकेंगे—

यदि आप ताँबे के अणुओं को एक-दूसरे के साथ मिलाकर एक पंक्ति में रखें तो एक इंच लम्बी पंक्ति बनाने के लिये १० करोड़ अणु रखने पड़ेंगे।

अंगूर के एक दाने में इतने अणु होते हैं कि यदि प्रत्येक अणु का व्यास १ इंच हो तो अंगूर का दाना पृथ्वी के बराबर बन जाए।

शायद इस बात का विश्वास करना आपके लिये कठिन हो कि कोई चीज़ इतनी छोटी भी हो सकती है। यह स्थिति अकेले आपकी ही नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति, यहाँ तक कि विद्वान् से विद्वान् वैज्ञानिक भी, अणु के सम्बन्ध में आश्चर्य-चकित है।

आपकी मुट्ठी में जितने अणु हैं उन सब का वज़न समान नहीं होता। विभिन्न अणुओं की क्रियाओं को देखकर वैज्ञानिकों ने उनके वज़न की एक-दूसरे के साथ तुलना की है और सूची बनाई है जिसमें सबसे पहले हल्के से हल्का अणु रखा है और अन्त में भारी से भारी। हाइड्रोजन गैस, जिसे बच्चों के गुब्बारों में भरा जाता है, वज़न में बहुत हल्की होती है, इसलिये यदि उसका अणु बहुत हल्का हो तो इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। यूरेनियम धातु का अणु, जो अणु-ऊर्जा के सम्बन्ध में विख्यात हो गया है, सबसे भारी होता है, इसलिये जो अणु स्वतः प्रकृति में पाए जाते हैं, उनकी सूची में इसका नाम सबसे अन्त में आता है। मनुष्य ने इससे भी भारी अणु बनाए

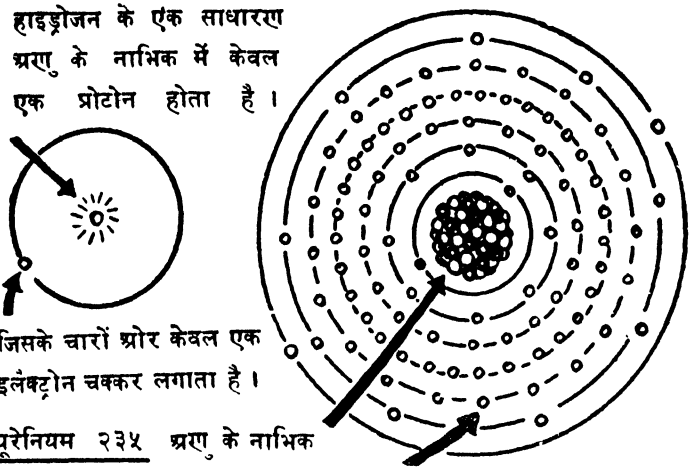

यूरेनियम २३५ अणु के नाभिक में ९२ प्रोटोन और १४३ न्यूट्रोन होते है। नाभिक के चारों ओर ९२ इलैक्ट्रोन विभिन्न त्रिज्याओं में चक्कर लगाते रहते हैं।

हैं जिनके नाम इस सूची में यूरेनियम के बाद रखे जाते हैं।

विभिन्न अणु जिस प्रकार कार्य करते हैं उसका ज्ञान प्राप्त करके उस ज्ञान के आधार पर वैज्ञानिकों ने अणुओं के चित्र बनाए हैं। इस प्रकार के कुछ चित्र इस अध्याय में दिये गए हैं।

मान लीजिये कि आप अपनी मुट्ठी वाले अणुओं में से एक अणु को देखने में सफल हो जाते हैं। उसमें आप क्या पाएंगे ? हम एक अणु को इतना बड़ा मान लेते हैं जितना बड़ा एक विशाल कमरा। इस कमरे-जितने बड़े अणु के अन्दर का स्थान अधिकांशतः रिक्त होगा। किन्तु इसके मध्य में आप एक बहुत छोटा-सा धब्बा देखेंगे जो आकार में मक्खी जितना

होगा। इसे अणु का 'नाभिक' (न्यूक्लियस—Nucleus) कहते हैं। यही अणु का वह भाग है एवं अंग है जिसमें से अणु-ऊर्जा निकाली जाती है। इसी भाग में से वह ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है जो पन-डुब्बियों को चला सकती है, हमारे घरों को रोशन कर सकती है, अथवा संसार को महा-नाश के गर्त में ढकेल सकती है।

किसी एक अणु के नाभिक को तोड़ने से जो ऊर्जा प्राप्त होती है वह परिमाण में बहुत थोड़ी होती है। किन्तु मानव ने करोड़ों-अरबों अणुओं के नाभिकों को एक-साथ तोड़ना और उनके अन्दर से निकली हुई ऊर्जा को एकत्रित करके उसे काम में लाना सीख लिया है।

कमरे के आकार के अणु को एक बार फिर देखिये। यदि आप इसके बाहरी भागों को ध्यानपूर्वक देखेंगे तो पता लगेगा कि किसी चीज के बहुत छोटे-छोटे टुकड़े नाभिक के चारों ओर लगभग उसी तरह घूम रहे हैं जिस तरह तारे सूर्य के चारों ओर घूमते हैं। इन छोटे-छोटे टुकड़ों को 'इलैक्ट्रोन' (Electrons) कहते हैं। ये अणु के वे अंग हैं जो दिया-सलाई जलाने, रोटी पकाने, भोजन पचाने, शरीर को बढ़ाने आदि की सहस्रों क्रियाएँ एवं परिवर्तन करते हैं। करोड़ों-अरबों इलैक्ट्रोन, जो अणुओं के साथ जुड़े हुए नहीं होते, हमें नित्य-प्रति प्रयोग में आने वाली बिजली प्रदान करते हैं।

प्रत्येक अणु के चारों ओर चक्कर लगाने वाले इलैक्ट्रोनों की संख्या उस अणु की जाति पर निर्भर करती है। यूरेनियम के अणु के चारों ओर आपको ९२ इलैक्ट्रोन चक्कर लगाते

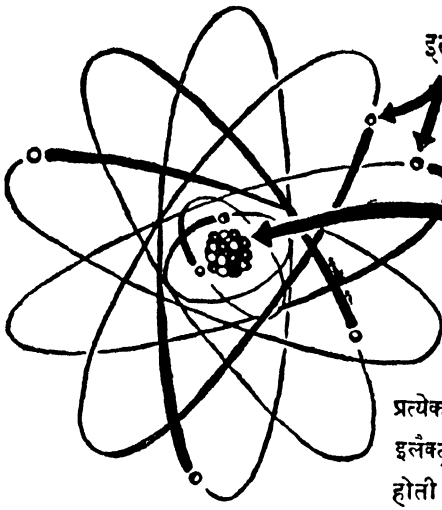

हुए मिलेंगे। संसार में जितने मूल तत्त्व (Elements) हैं, उन में से प्रत्येक के अणु में इलैक्ट्रोनों की संख्या विभिन्न होती है। किन्तु किसी एक तत्त्व के सभी अणुओं में उनकी संख्या समान होती है। उदाहरण के तौर पर यूरेनियम धातु के प्रत्येक अणु में ९२ ही इलैक्ट्रोन होंगे।

आप कमरे के आकार के अणु के मध्य भाग अर्थात् उसके नाभिक को ध्यान-पूर्वक देखिये। यह केन्द्र छोटी-छोटी चीजों के एक पुलिन्दे की तरह दिखाई देगा। इस पुलिन्दे में लगभग २० विभिन्न तरह के कण (Particles) विद्यमान होंगे। किंतु इनमें से दो ही तरह के कण अधिक विख्यात हैं। इन दो में से एक को प्रोटोन (Proton) कहते हैं। प्रत्येक अणु के नाभिक में प्रोटोनों की संख्या उन इलैक्ट्रोनों की संख्या के बराबर होती है जो

नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाते रहते हैं। प्रत्येक तत्त्व के अणु में एक या एक से अधिक प्रोटोन होते हैं।

अणु के नाभिक में दूसरी प्रकार का महत्त्वपूर्ण कण न्यूट्रोन (Neutron) कहलाता है। यह नाम इस कण को इस लिये दिया गया है कि यह 'Neutral' (उदासीन) होता है। इसके अन्दर विद्युतीय आवेश (चार्ज) नहीं होता। यह अणु के नाभिक में प्रोटोन के साथ बँधा रहता है। हाइड्रोजन के अणुओं को छोड़कर शेष समस्त तत्त्वों के अणुओं में न्यूट्रोन होते हैं।

अब आपको ज्ञात हो गया कि अणु जिन कणों से बना हुआ होता, है उनमें से तीन प्रकार के कण सब से अधिक विख्यात हैं और उनके नाम निम्न-लिखित हैं—

(१) इलैक्ट्रोन; (२) प्रोटोन; (३) न्यूट्रोन।

आप को यह भी ज्ञात हो गया होगा कि प्रत्येक अणु में एक केन्द्रीय भाग अर्थात् नाभिक होता है और उसके चारों ओर इलैक्ट्रोन चक्कर लगाते रहते हैं। साथ ही आपको यह भी बताया गया है कि अणु-ऊर्जा तभी प्राप्त हो सकती है जब अणु के नाभिक को विदीर्ण किया जाए।

अब आप किसी अणु के नाभिक की एक ऐसे पुलिन्दे के रूप में कल्पना कीजिये जिसकी विभिन्न वस्तुएं बड़ी मज़बूती से इकट्ठी बाँधी गई हों। इस 'मज़बूती' की मात्रा विभिन्न होती है। अणुओं की कुछ जातियां ऐसी हैं जिन के नाभिक के कणों का पुलिन्दा अधिक मज़बूती से बंधा हुआ

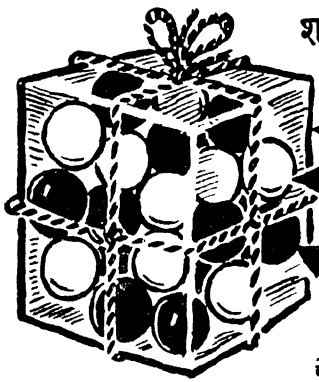

होता है। शायद इसका यह कारण हो कि कुछ विशेष तत्त्वों के अणुओं के कण आपस में अधिक अच्छी तरह जुड़े रह सकते हैं; चाहे कुछ भी हो, किन्तु यह बात निश्चित है कि कुछ विशेष अणुओं के नाभिकों के कणों को दूसरी जाति के अणु-नाभिकों की अपेक्षा अधिक जल्दी और अधिक आसानी से अलग-अलग किया जा सकता है। कुछ ऐसे भी अणु होते हैं जिनके नाभिक अचानक स्वतः ही टूट जाते हैं। ऐसे अणु रेडियो-सक्रिय (Radioactive) कहलाते हैं।

जब रेडियो-सक्रिय अणु स्वतः टूटते हैं या जब मनुष्य अणुओं को विदीर्ण करते हैं तो उनके नाभिकों में जो ऊर्जा बंधी हुई थी उस का कुछ अंश मुक्त होकर उष्मा (Heat) और रेडियेशन का रूप धारण कर लेता है। इसी ऊर्जा को हम अणु-ऊर्जा के नाम से पुकारते हैं।

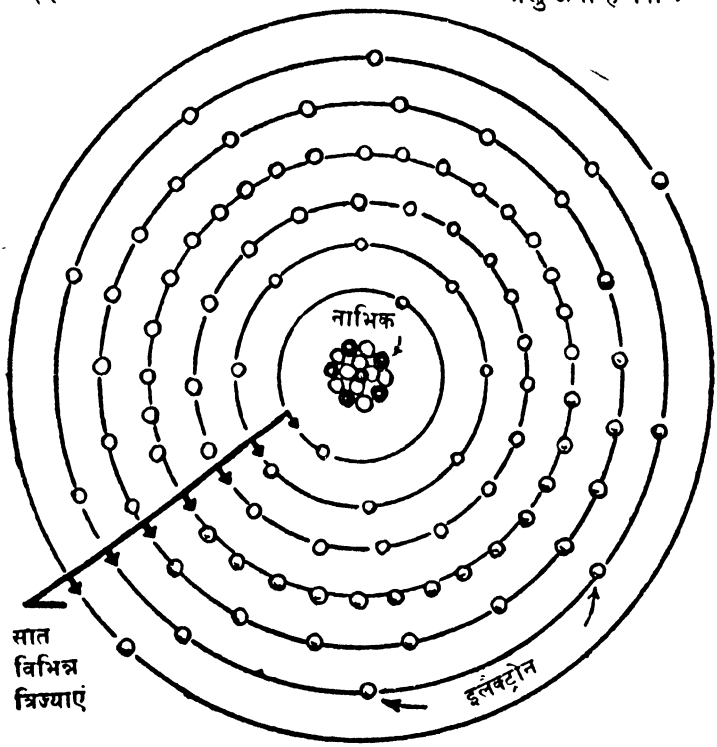

यूरेनियम २३५ का क्या अर्थ है ?

यूरेनियम २३५ के **नाभिक** में ९२ प्रोटोन और १४३ न्यूट्रोन होते है। नाभिक में जितने प्रोटोन है उतने ही, अर्थात् ९२, **इलैक्ट्रोन** सात विभिन्न त्रिज्याओं में नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाते रहते है।

इस अणु का आणविक वजन २३५ है, अर्थात्—

प्रोटोनों की संख्या	=	९२
न्यूट्रोनों की संख्या	=	१४३
आणविक वजन	=	२३५

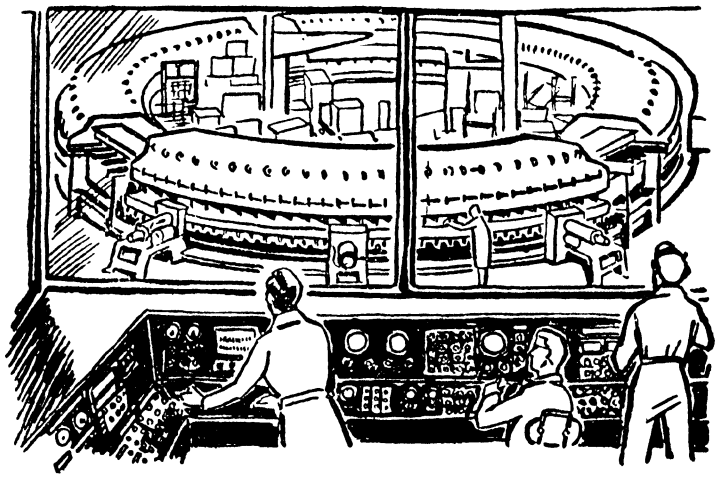

: ३ :

अणु का विदारण

अणु-ऊर्जा साधारणतया अणुओं को विदीर्ण करने से प्राप्त होती है। किन्तु इसकी उलट प्रक्रिया—अर्थात अणुओं के संगलन—से भी अणु-ऊर्जा उपलब्ध होती है। लोग आज यह सीख गए हैं कि किस तरह करोड़ों अणुओं के नाभिकों को विदीर्ण करके उनसे इतनी अणु-ऊर्जा प्राप्त की जाए जो विस्फोट उत्पन्न कर सके। किन्तु आज से काफी दिन पहले ही वे अणु-विदारक यन्त्र (Atom-smasher) की सहायता

से अणुओं को तोड़ना सीख गए थे। इस से उन्हें अणुओं की बनावट के रहस्य के सम्बन्ध में कुछ अधिक जानकारी प्राप्त हो सकी। विभिन्न अणुओं को तोड़ कर वैज्ञानिक लोग अपने ज्ञान में अब भी वृद्धि करते जा रहे हैं। अणु-विदारक यन्त्र के बनने से पहले भी कुछ अणुओं के नाभिक पृथ्वी के अन्दर सदा से टूटते रहते थे, अब भी टूटते रहते हैं और भविष्य में भी टूटते रहेंगे। अणु-ऊर्जा कोई नई चीज़ नहीं है। अनादि काल से एक विशेष प्रक्रम चल रहा है जिसके अनुसार कुछ रेडियो-सक्रिय अणु सदा टूटते रहते हैं।

कुछ अणु हर समय आपके अन्दर और बाहर रहते हैं। आप की हड्डियों में कुछ अणु हर समय टूटते रहते हैं, क्योंकि हड्डियों के अन्दर फ़ास्फ़ोरस की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा रेडियो-सक्रिय होती है। आपके पांव के नीचे की धरती में, आप जो हवा सांस द्वारा अन्दर ले जाते हैं उसमें, तथा आप जो जल पीते हैं उसमें, सदा कुछ रेडियो-सक्रिय अणु रहते हैं। एक मील वर्ग की औसत धरती में, जो एक फुट गहरी हो, एक 'ग्राम' रेडियम तथा तीन टन यूरेनियम होता है। मानव जब से इस पृथ्वी पर उत्पन्न हुआ है तभी से वह इतनी रेडियो-सक्रियता के बीच रहता आया है।

कुछ घड़ियों और घंटों की सूइयों पर तथा अंकों पर रेडियम अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में लगाया जाता है। यदि आप अन्धेरे में देख सकने का थोड़ी देर अभ्यास करके किसी ऐसी घड़ी के ऊपर आवर्धक शीशा (Magnifying glass) रखें तो आप उसमें प्रकाश के, सूई की नोक जैसे, अलग-अलग

रेडियो-सक्रिय अणु हर समय हमारे चारो ओर मौजूद रहते है।

बिन्दु-से देखेंगे। वास्तव में बात यह है कि घड़ी की सूइयों पर जो रेडियम लगा हुआ है उस के कुछ अणुओं के नाभिकों के आणविक कण दूसरी चीज़ों से टकराते हैं और उन्हें प्रकाशमान कर देते हैं। आप प्रत्येक सूक्ष्म कण को अलग-अलग नहीं देख सकते, किन्तु ये कण जो काम करते हैं वह आप देख सकते हैं।

रेडियम के मुट्ठी-भर अणुओं को हाथ में लेना हानिकारक हो सकता है, क्योंकि रेडियम दाह के भयानक घाव पैदा कर सकता है। किन्तु इसी रेडियम की शक्ति-शाली किरणों को यदि उचित रीति से काम में लाया जाए तो वे कैन्सर जैसे भयानक रोग के इलाज में लाभदायक हो सकती हैं। न्यूयार्क नगर के 'रूज़वैल्ट हस्पताल' में एक तहख़ाना बना हुआ है। उसमें कैन्सर के रोगियों का रेडियम की किरणों द्वारा इलाज

किया जाता है। रोगी को एक कमरे में लिटा दिया जाता है। डाक्टर लोग एक ऐसी खिड़की में से रोगी को देखते रहते हैं जो दो फुट मोटी होती है और जिसके दोनों ओर शीशा लगा हुआ होता है तथा शीशों के बीच में पानी भरा हुआ होता है। यह खिड़की रोगी पर पड़ने वाली रेडियम-किरणों से डाक्टरों की रक्षा करती है। रोगी के शरीर के अन्दर, गहराई में, जो कैन्सर के सैल होते हैं, उन पर रेडियम की किरणें डाली जाती हैं। कमरे का द्वार बिजली से खुलता और बन्द होता है। जब रोगी के अतिरिक्त अन्य सब लोग कमरे से बाहर आ जाते हैं तब बिजली के द्वारा कमरे का द्वार बन्द कर दिया जाता है। उसके बाद इलाज शुरू किया जाता है और रेडियम की २५ गुटिकाओं (Pellets) से किरणें रुग्ण पेशियों पर केन्द्रीभूत रूप में डाली जाती हैं। इन २५ गुटिकाओं का वज़न कुल

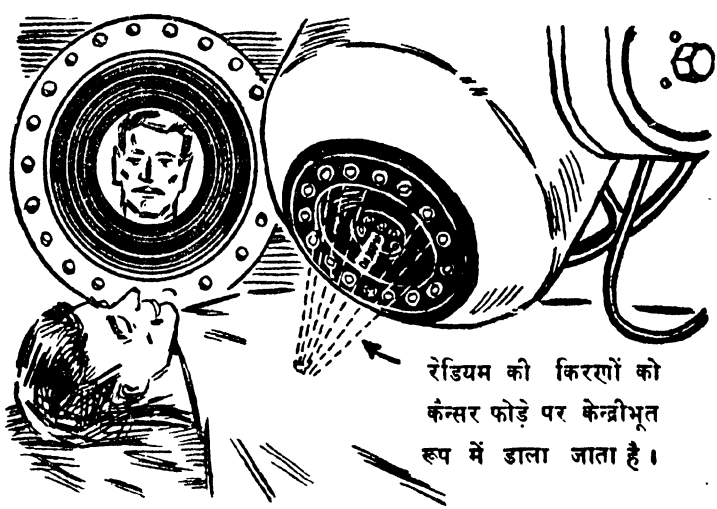

रेडियम की किरणों को कैन्सर फोड़े पर केन्द्रीभूत रूप में डाला जाता है।

मिलाकर ५० ग्राम होता है, अर्थात् लगभग ४ तोले, किन्तु इनका मूल्य लगभग १० लाख डालर होता है।

रूज़वैल्ट हस्पताल में जितना रेडियम है उतना रेडियम अमरीका भर में अन्य किसी एक स्थान पर नहीं है। बहुत-से हस्पताल रेडियम का एक छोटा-सा टुकड़ा खरीदने में ही बड़ी कठिनाई से समर्थ हो पाते हैं, किन्तु इसकी छोटी से छोटी मात्रा भी कैन्सर रोग के विरुद्ध हमारा जो युद्ध छिड़ा हुआ है उसमें हमारी सहायक होती है।

हस्पतालों में रेडियम के टुकड़े को शीशे की नली में डाल-कर तहख़ाने में रखा जाता है। शीशे की नली के चारों ओर पीतल और सीसे की चादरें रखी जाती हैं। ये चादरें रेडियम से प्रतिक्षण उत्पन्न होने वाली किरणों से वहाँ के कर्मचारियों की रक्षा करती हैं।

इससे पहले कि लोग रेडियम में से उत्पन्न होने वाली अणु-ऊर्जा के परिणामों को भली-भांति समझें, न्यू-जर्सी के एक घड़ी बनाने के कारखाने में एक दुर्घटना हुई। इस कार-खाने में कुछ स्त्रियाँ हाथ की घड़ियों की सूइयों पर बहुत बारीक ब्रशों से रेडियम का रोग़न लगाने का काम करती थीं। ब्रशों की नोकों को बारीक रखने के लिये वे उन्हें अपने होंटों के बीच में दबाती या जीभ पर फेरती रहती थीं। इस तरह रेडियम की अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा प्रतिदिन उनके अन्दर जाती रही और वह उनकी हड्डियों में समाती गई। कुछ वर्षों के बाद उनमें से कुछ स्त्रियाँ रेडियम के विष के कारण मर गईं। उनकी विष-युक्त हड्डियों को अब विभिन्न प्रयोगशालाओं में रखा

गया है ताकि उन पर वैज्ञानिक अनुसंधान किये जा सकें।

आज भी यदि गेइगर-मापी यंत्र को उन हड्डियों के निकट ले जाया जाए तो यंत्र में आवाज़ पैदा होती है, क्योंकि रेडियम के अणु बहुत लम्बी अवधि तक टूटते रहते हैं। इन स्त्रियों की हड्डियों में जितना रेडियम इकट्ठा हो गया था, उसकी आधी मात्रा १६०० वर्षों में नए अणुओं में परिवर्तित होगी। रेडियम-अणुओं की चाहे कितनी भी मात्रा क्यों न हो, उस मात्रा का केवल आधा भाग १६०० वर्षों में टूटेगा। यह अवधि रेडियम की 'अर्ध-जीवन-अवधि' कहलाती है। शेष आधे रेडियम की आधी मात्रा फिर अगले १६०० वर्षों में टूट जाएगी।

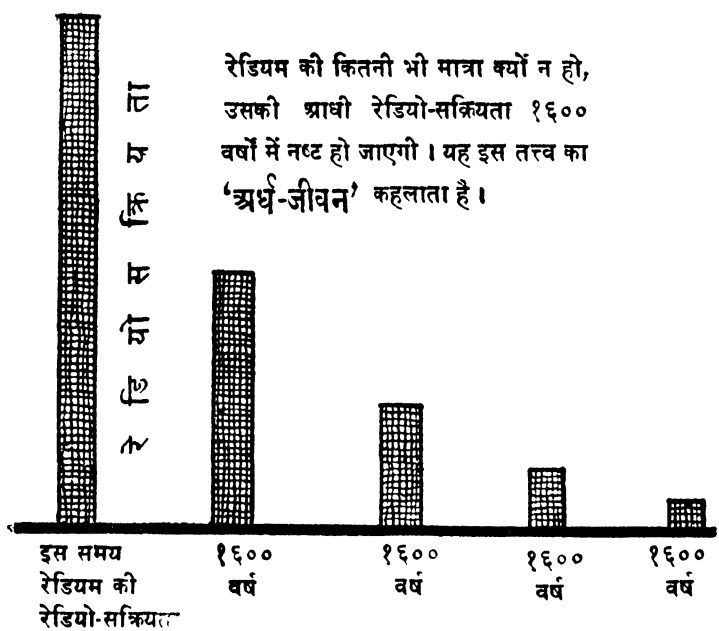

इसी तरह यह क्रम चलता रहेगा।

जिस गति से रेडियम टूटता जाता है उस गति की चाल कभी नहीं बदलती। अत्यन्त शक्ति-शाली बिजली की रौ, गर्मी, सर्दी, तीव्र तेज़ाब,—यहाँ तक कि ऐक्सरे की किरणें भी—इस गति को नहीं बदल सकतीं। रेडियम में आप शीघ्रता नहीं ला सकते।

जब रेडियम का कोई अणु टूटता है तो नए रेडियो-सक्रिय तत्व बनते हैं, किन्तु इन में रेडियम की अपेक्षा कम ऊर्जा होती है। इन नए अणुओं के नाभिकों में से छोटे-छोटे कण टूटते रहते हैं, नई ऊर्जा मुक्त होती रहती है और दूसरे रेडियो-सक्रिय तत्त्व उत्पन्न होते रहते हैं। धीरे-धीरे एक निश्चित् तथा शाश्वत प्रक्रम के अनुसार, नए अणु टूट-टूटकर हल्के तत्त्वों में परिणत होते जाते हैं। इस प्रक्रम में ये नए अणु रेडियेशन को तथा छोटे-छोटे कणों को अपने नाभिकों में से झाड़ते रहते हैं। इस विदारण-क्रिया के बहुत बार दोहराए जाने के बाद अन्त में सीसे के अणु बन जाते हैं जिनमें रेडियो-सक्रियता बिल्कुल नहीं होती।

यूरेनियम की तुलना हम किसी वंश-वृक्ष की जड़ से कर सकते हैं, जिसकी ५ वीं पीढ़ी में रेडियम आता है और अन्तिम पीढ़ी में सीसा। प्रकृति के इस शाश्वत प्रक्रम में जितनी ऊर्जा उन्मुक्त होती रहती है उसकी मात्रा उस ऊर्जा के मुक़ाबले में बहुत ही कम है जो मानव ने अणु को तोड़कर प्राप्त कर ली है।

अणु किस तरह विदीर्ण किये जाते हैं ? आप अणुओं पर अनन्त समय तक हथौड़ा मारते रहिये, किन्तु आप इस तरह एक भी अणु का नाभिक विदीर्ण नहीं कर सकेंगे। आप इतनी सूक्ष्म चीज़ पर हथौड़ा मार ही नहीं सकते। अणु पर हथौड़ा मारना ऐसा ही है जैसा अपनी आँख में से धूल का एक कण निकालने के लिये किसी विशाल जंगी जहाज़ का प्रयोग करना। आपके अन्दर इतनी शक्ति नहीं है कि आप किसी अणु के नाभिक को तोड़-फोड़ सकें, क्योंकि वह अद्‌भुत, रहस्यपूर्ण शक्ति जो इसे बाँधकर रखती है, इतनी प्रबल है कि आप उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते।

अणु के नाभिक को विदीर्ण करने के लिये 'ऐटम-स्मैशर' (अणु-विदारक नामक यंत्र) काम में लाया जाता है और यह यंत्र अणु के विभिन्न भागों—जैसे प्रोटोनों, न्यूट्रोनों अथवा इलैक्ट्रोनों—को अलग-अलग प्रयोग में लाता है। यंत्र अपने लक्ष्य पर इन सूक्ष्म कणों को बड़ी भयंकर गति से फैंकता है; इस तरह ये कण अणुओं के नाभिकों के अन्दर घुस जाते हैं। कई बार ऐसा करने से नाभिक के विभिन्न कण सब दिशाओं में बिखर जाते हैं।

जब किसी अणु के नाभिक में बाहर से कण घुस जाते हैं, अथवा उसके अन्दर के कण उससे अलग हो जाते हैं तो वैज्ञानिक कहते हैं कि अणु 'विदीर्ण' हो गया है। ऐसी स्थिति में अणु के नाभिक के कणों को बाँधकर रखने वाली रहस्य-पूर्ण शक्ति को परास्त कर दिया जाता है। अणु के विदीर्ण होने में या तो उसके नाभिक में कुछ नए कण बढ़ जाते हैं, या

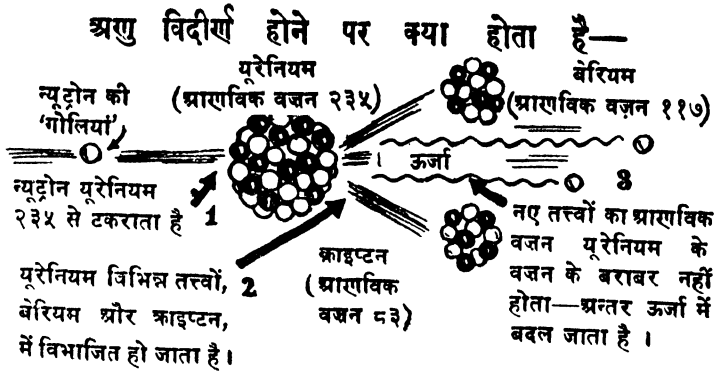

उसके अन्दर जो ऊर्जा तथा प्रोटोन और न्यूट्रोन थे उनमें से कुछ ऊर्जा तथा कुछ प्रोटोन और न्यूट्रोन मुक्त हो जाते हैं। यह विदारण शीशे के किसी टुकड़े को तोड़ने-फोड़ने के समान नहीं होता ।

जब किसी अणु के नाभिक में नए कण डाले जाते हैं तो इस क्रिया को 'संगलन' (Fusion) कहते हैं। सूर्य के अणुओं में यह संगलन होता रहता है, इसीलिये वह ऊर्जा उत्पन्न करता है। हाइड्रोजन-बम का विस्फोट भी इसी प्रकार संगलन के कारण होता है ।

दूसरी ओर, जब अणु-नाभिकों के कणों में से कुछ कण अलग कर दिये जाते हैं तो इस क्रिया को 'खंडन' (Fission) कहते हैं। इस क्रिया के परिणाम-स्वरूप जो ऊर्जा मुक्त होती है (जैसा कि अणु-बम में होता है) वह भयंकर नाश का कारण हो सकती है। दूसरी ओर वह आश्चर्यजनक सुकार्य भी कर सकती है—जैसा कि इस पुस्तक में आगे बतलाया गया है।

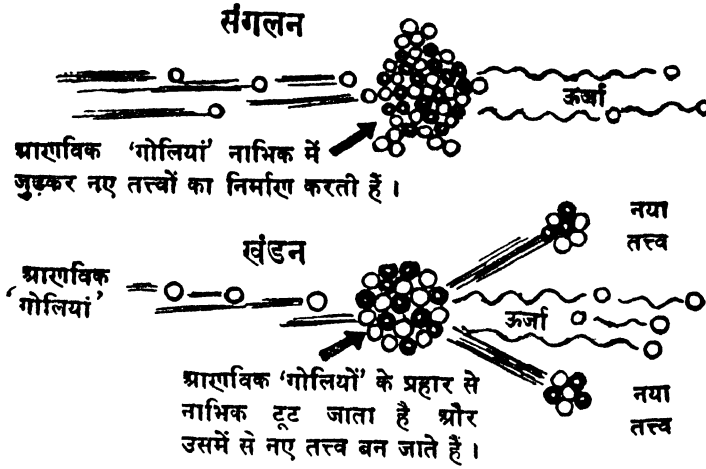

ऐटम-स्मैशर (Atom-smasher) बहुत बड़े यन्त्र होते हैं जो संगलन तथा खंडन की क्रियाओं को एक छोटे पैमाने पर सम्पन्न करते हैं। इनका प्रयोग वैज्ञानिक लोग इस उद्देश्य से करते हैं कि वे इस सूक्ष्म पदार्थ के सम्बन्ध में और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें। ऐटम-स्मैशर यन्त्र कई प्रकार के हैं, किन्तु सभी के नाम बड़े लम्बे-लम्बे और बेढब-से हैं—जैसे, 'वैन डी ग्राफ़ जैनरेटर' (Van de Graaf generator), कौस्मोट्रोन (Cosmotron), साइक्लोट्रोन (Cyclotron), बीटाट्रोन (Betatron), तथा बीवाट्रोन (Bevatron)। ऐटम-स्मैशर, जिन्हें वैज्ञानिक लोग 'पार्टिकल ऐक्सेलरेटर' (Particle accelerator) कहते हैं, बहुत मूल्यवान् होते हैं। एक स्मैशर बनाने में करोड़ों रुपये लग जाते हैं।

आप इन ऐटम-स्मैशरों को ऐसा मान लीजिये मानो वे

निशानाबाज़ी सीखने के क्षेत्र हैं। जिन अणुओं को हम विदीर्ण करना चाहते हैं वे, समझ लीजिये, निशाना लगाने के लिए लक्ष्य हैं, और निशाने पर मारने के लिये गोलियाँ हैं—दूसरे अणुओं के कण, जैसे, प्रोटोन, न्यूट्रोन या इलैक्ट्रोन।

यद्यपि प्रत्येक अणु का अधिकांश भाग मात्र रिक्त-स्थान होता है, फिर भी जिन कणों को उन पर मारा जाता है उनमें से पर्याप्त कण अपने लक्ष्य पर जा लगते हैं, और वे या तो कुछ अणुओं के नाभिकों में घुस जाते हैं, या फिर कुछ अणुओं के नाभिकों को तोड़-फोड़ डालते हैं।

ऐटम-स्मैशरों के अन्दर होने वाले आणविक विस्फोट निःशब्द होते हैं। यह सारा प्रक्रम एक रहस्यपूर्ण ढंग से निःशब्द होता है; बस एक अलार्म-घंटी की आवाज़ या मोटर की घों-घों की आवाज़ आती रहती है। कोई भी व्यक्ति आणविक गोलियों को अथवा नाभिकों में से टूटकर निकलने वाले आणविक कणों को अलग-अलग, एक-एक करके, नहीं देख सकता। केवल गेइगर-काउण्टर तथा अन्य यन्त्र उन कणों का (जिनका अस्तित्व ले-देकर केवल एक सैकिंड के भी कुछ अंश तक ही रहता है) नाप-तौल लेते हैं। स्मैशर के अन्दर 'क्लाउड-चेम्बर' (मेघ-कक्ष) में स्व-चलित कैमरे लगे हुए होते हैं। ये कैमरे इन कणों के पथ का रिकार्ड ले लेते हैं। इस रीति से मनुष्य इस विलक्षण अणु के सम्बन्ध में, जिससे यह सारा विश्व बना हुआ है, अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त करता रहता है।

इन सूक्ष्म कणों के सम्बन्ध में अभी हमें बहुत कुछ जानना

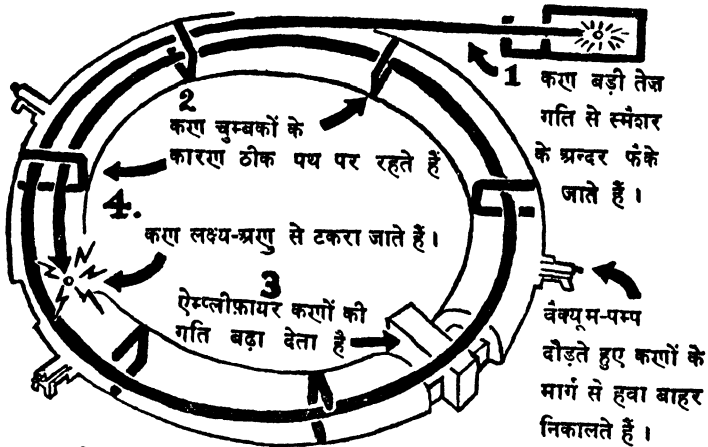

ऐटम-स्मैशर किस तरह काम करता है

है। आज के बच्चे कल बड़े होकर जब वैज्ञानिक बनेंगे तो वे सम्भवतः बहुत से नए और विलक्षण तथ्यों को खोज निकालेंगे। हो सकता है, आज की कुछ वैज्ञानिक मान्यताओं को उस समय बदलना पड़े, क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान विश्व का नियन्त्रण करने वाली शक्तियों के सम्बन्ध में बढ़ता जाता है, उसकी मान्यताएँ भी बदलती जाती हैं।

फिर भी अणु के सम्बन्ध में काफी समय पहले लोगों की जो धारणाएँ थीं, उनमें से कुछ धारणाएँ नवीनतम अनुसंधानों की कसौटी पर परखे जाने के बाद सत्य ही सिद्ध हुई हैं। आइन्स्टीन ने सन् १९०५ में अपनी यह धारणा वैज्ञानिकों के सामने रखी थी कि द्रव्य (Matter) को ऊर्जा (Energy) में परिणत किया जा सकता है और ऊर्जा को द्रव्य में। अब जो

अणु-सम्बन्धी नवीन अनुसंधान हुए हैं उन्होंने आइन्स्टीन की इस धारणा को सत्य सिद्ध कर दिया है।

यदि कोई आदमी किसी विदीर्ण हुए-हुए अणु के कणों को दोबारा एकत्रित करले तो उन कणों का वज़न प्रारम्भिक अणु के वज़न से थोड़ा-सा कम होगा। आणविक गणित में टुकड़े सम्पूर्ण पदार्थ से कम वज़न के होते हैं। अणु का कुछ भाग आणविक ऊर्जा के रूप में लुप्त हो जाता है।

ऊर्जा उस समय द्रव्य में परिणत होती है जब उन कणों में, जो ऐटम-स्मैशर के अन्दर अपने लक्ष्य पर फेंके जाने के लिये तैयार किये जाते हैं, बिजली की ऊर्जा का समावेश किया जाता है। ऐटम-स्मैशर के अन्दर इलैक्ट्रोन अपने सामान्य वज़न से एक हज़ार गुणा अधिक वज़नदार हो जाते हैं। इसका कारण यह है कि उन्हें उनके लक्ष्य पर मारने से पहले उनकी गति प्रकाश की गति के बराबर करने के लिये उनके

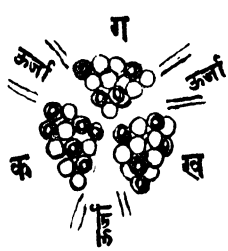

द्रव्य से ऊर्जा

विदीर्ण होने से पहले अणु का जो वजन होता है विदीर्ण होने के बाद उसके 'क' 'ख' और 'ग' भागों का वजन उतना नहीं होता। अणु का यह भाग ऊर्जा में परिणत हो गया है

ऊर्जा से द्रव्य

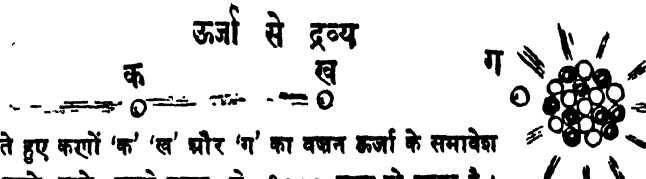

दौड़ते हुए कणों 'क' 'ख' और 'ग' का वजन ऊर्जा के समावेश से पहले वाले अपने वजन से १००० गुणा हो जाता है।

अन्दर भारी मात्रा में ऊर्जा का समावेश किया जाता है जिसके कारण उनका वज़न बढ़ जाता है। इतनी तीव्र गति प्राप्त करने के लिये इन आणविक 'गोलियों' को बहुत लम्बी यात्रा करनी पड़ती है। 'बीवाट्रोन' नामक ऐटम-स्मैशर में कणों को एक अत्यन्त शक्तिशाली चुम्बक के प्रभाव के कारण एक गोल पथ में तीन लाख मील की यात्रा करनी पड़ती है। जब कोई आणविक 'गोली' अपने गोल पथ में चक्कर लगाती है तो एक प्रकार की बिजली की कोहनी से उसकी गति प्रत्येक चक्कर में बढ़ा दी जाती है। प्रत्येक बार ज़रा-सी ऊर्जा द्रव्य में परिणत होती जाती है और इलैक्ट्रोन अधिक भारी होता जाता है। आज मानव ऊर्जा को द्रव्य में और द्रव्य को ऊर्जा में परिणत कर सकता है।

यदि एक टन कोयले को जलाया जाए तो उसके वज़न का बहुत ही थोड़ा भाग नष्ट होता है—आप उसकी राख तथा निकलने वाली गैस के वज़न का जोड़ करलें। किन्तु नष्ट होने वाले वज़न की मात्रा इतनी थोड़ी होती है कि इसका नाप-तोल नहीं किया जा सकता। अणु जब रासायनिक रीति से अपना स्थान बदलते हैं—जब नाभिक विदीर्ण नहीं होता—तो उसके वज़न की इतनी नगण्य मात्रा नष्ट होती है कि वैज्ञानिक लोग बहुत समय तक यही समझते रहे कि उसके वज़न में कोई परिवर्तन नहीं होता। यह उन उदाहरणों में से एक है कि जैसे-जैसे मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है, उसे अपनी पुरानी धारणाएँ बदलनी पड़ती हैं।

रेडियम सृष्टि के प्रारम्भ से ही अपने पदार्थ को ऊर्जा में

परिणत करता आ रहा है। यूरेनियम आणविक ऊर्जा का वह प्रमुख साधन है जिसे अभी मानव नियंत्रित करना सीख पाया है, किन्तु इसके भी नाभिक में जितनी ऊर्जा निहित है वह सारी हम अभी मुक्त नहीं कर सके हैं। यूरेनियम-अणु को विदीर्ण करके मानव उसमें से जितनी ऊर्जा मुक्त कर सका है वह उस द्रव्य के, जिससे अणु बने हुए होते हैं, एक प्रतिशत के दसवें भाग के बारबर है। यदि १ पौंड यूरेनियम को पूरी तरह से ऊर्जा में परिणत कर दिया जाए तो वह ऊर्जा इतनी होगी जितनी १५०० टन कोयले को जलाने से उत्पन्न होती है। जब मानव ऐटम-स्मैशर की सहायता से और अधिक आणविक रहस्यों का पता लगा लेगा तो सम्भवतः वह प्रत्येक अणु में से और अधिक ऊर्जा प्राप्त करके उसे अपने काम में ला सकेगा।

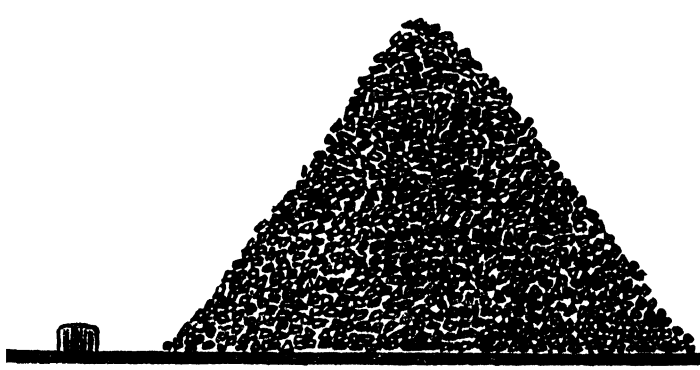

यूरेनियम का १ पौंड = १५०० टन कोयला

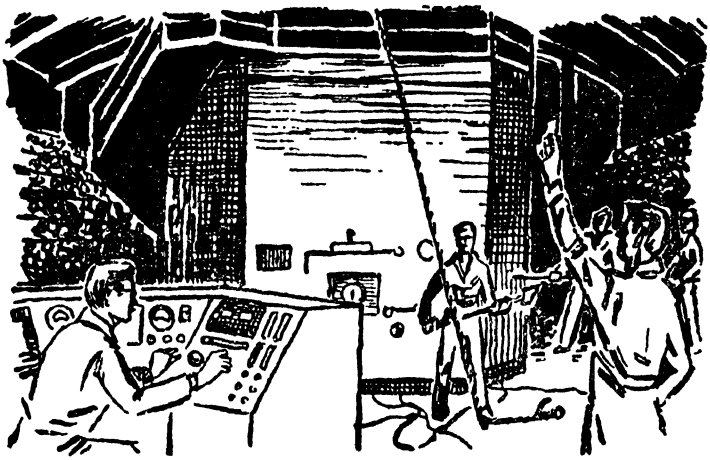

: ४ :

एक रहस्यपूर्ण भट्टी

यदि आप किसी टेलीफ़ोन पर निम्न बातचीत सुनते तो आप इसका क्या अर्थ लगाते ?—

"इटैलियन हवाबाज़ नई दुनियाँ में उतर गया है।"

"वहाँ के निवासियों ने कैसा व्यवहार किया ?"

"अत्यन्त मित्रता-पूर्ण।"

किन्तु यह बातचीत सचमुच २ दिसम्बर, सन् १९४२ के दिन हुई थी। वास्तव में यह सबसे पहली आणविक भट्टी की सफलता की घोषणा थी। यह सबसे पहला अवसर था जब

मानव ने अणु में से ऊर्जा निकाली थी और उसे नियंत्रित किया था। पहली बार अणुओं को एक बड़े पैमाने पर विदीर्ण किया गया था; और साथ ही यह भी पता लगा लिया गया था कि इस प्रक्रम को किस तरह जब चाहें प्रारम्भ किया जा सकता है।

जब यह महान घटना घटी, उस समय अमरीका विश्व-युद्ध में संलग्न था, इसलिये इस बात की खुले तौर पर घोषणा नहीं की जा सकती थी। किन्तु शिकागो नगर से यह सूचना वाशिंगटन नगर को गुप्त-भाषा के द्वारा, उपरोक्त शब्दों में, भेजी गई। प्रथम आणविक भट्टी के सम्बन्ध में निम्न कहानी पढ़कर आप इस गुप्त भाषा को समझ जाएँगे।

आणविक भट्टी अणुओं के नाभिकों को विदीर्ण करने का एक साधन है। इसका पहला कारखाना अमरीका के शिकागो नगर में स्टैग-फ़ील्ड नामक स्थान पर गुप्त रूप से बनाया गया था। वहाँ कुछ वैज्ञानिक इस प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे कि "क्या यह सम्भव है कि यदि यूरेनियम को विदीर्ण किया जाए तो उसमें से निकले हुए न्यूट्रोन अन्य अणुओं को विदीर्ण कर दें, और इसी तरह क्रमशः एक शृँखलात्मक प्रतिक्रिया (Chain Reaction) प्रारम्भ हो जाए।"

शृँखलात्मक प्रतिक्रिया क्या होती है—इसे समझाने के लिये आम-तौर पर चूहेदानी के उदाहरण से काम लिया जाता है। यदि आप कुछ चूहेदानियों को किसी मेज़ पर इस ढङ्ग से रख दें जिस तरह अगले चित्र में दिखाया गया है, और पहली चूहेदानी पर पत्थर का एक टुकड़ा डाल दें तो सारी

: ४ :

एक रहस्यपूर्ण भट्टी

यदि आप किसी टेलीफ़ोन पर निम्न बातचीत सुनते तो आप इसका क्या अर्थ लगाते ?—

"इटैलियन हवाबाज़ नई दुनियाँ में उतर गया है।"

"वहाँ के निवासियों ने कैसा व्यवहार किया ?"

"अत्यन्त मित्रता-पूर्ण।"

किन्तु यह बातचीत सचमुच २ दिसम्बर, सन् १९४२ के दिन हुई थी। वास्तव में यह सबसे पहली आणविक भट्टी की सफलता की घोषणा थी। यह सबसे पहला अवसर था जब

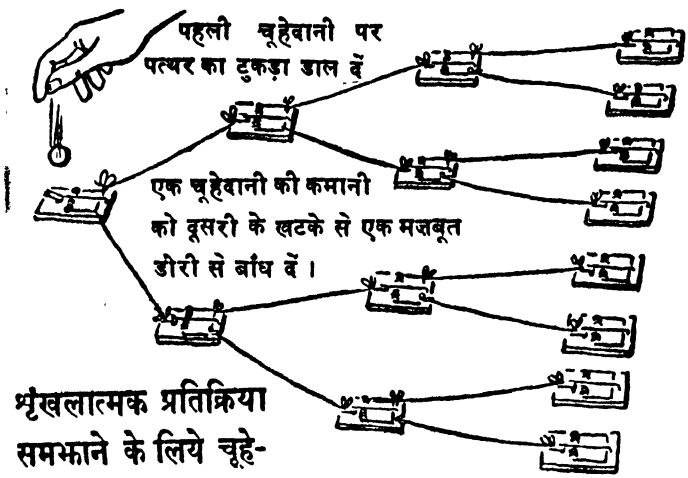

शृंखलात्मक प्रतिक्रिया समझाने के लिये चूहे-दानियों का उदाहरण

चूहेदानियों के खटके शृँखलात्मक रूप से बन्द होते चले जाएँगे। न्यूट्रोनों को आप पत्थर के इस टुकड़े की तरह समझ लें। यूरेनियम में, चाहे उसकी मात्रा थोड़ी हो या अधिक, कुछ अणु सदा ही टूटते रहते हैं। फल-स्वरूप उसमें कुछ न्यूट्रोन सदा स्वतन्त्र अवस्था में रहते हैं। यदि यूरेनियम की काफ़ी मात्रा एक स्थान पर एकत्रित कर ली जाए तो सम्भवतः ये स्वतन्त्र न्यूट्रोन यूरेनियम के दूसरे अणुओं के नाभिकों से टकराएँगे, जिससे ये दूसरे अणु विदीर्ण हो जाएँगे और उनमें से और न्यूट्रोन स्वतन्त्र हो जाएँगे। ये स्वतन्त्र न्यूट्रोन फिर अन्य अणुओं को इसी प्रकार तोड़ देंगे और यह प्रक्रम इसी तरह चलता रहेगा। यदि उपरोक्त प्रक्रम को कार्यान्वित किया जा सके तो विराट परिमाण में ऊर्जा मुक्त हो सकती है।

इस महान, गम्भीर और महत्त्वपूर्ण प्रयोग में भाग लेने वाले व्यक्ति जब रोज़ अपने काम पर जाते थे तो उनके मन की उस समय की उत्तेजना का अनुमान कीजिये। उनमें से किसी को भी ठीक-ठीक पता नहीं था कि इस प्रयोग का क्या परिणाम निकलेगा। किन्तु प्रयोग के मुख्य वैज्ञानिक, इटली-निवासी, एनरिको फ़र्मी, तथा उसके साथ काम करने वाले अन्य महान वैज्ञानिकों को इस बात का लगभग पूरा-पूरा विश्वास था कि इस प्रकार की शृँखलात्मक प्रतिक्रिया कार्यान्वित की जा सकती है।

ग्रेफ़ाइट को ईंटों की तरह काट-काटकर उन ईंटों की एक तह जमाकर भट्टी बनाने का कार्य प्रारम्भ किया गया। पैन्सिलों में जो 'सुर्मा' होता है वह ग्रेफ़ाइट ही है। यह एक प्रकार का कार्बन होता है। इस पदार्थ को न्यूट्रोनों की दौड़ की गति को नियन्त्रित करने के लिए काम में लाया गया। इस प्रकार के नियन्त्रण से न्यूट्रोन की 'गोलियाँ' अधिक संख्या में अणुओं को विदीर्ण कर सकेंगी—वैज्ञानिकों की ऐसी धारणा थी।

ग्रेफ़ाइट की पहली तह के ऊपर प्रयोग-कर्ताओं ने उसकी एक दूसरी तह जमा दी, जिसके बीच में यूरेनियम तथा यूरेनियम-ऑक्साइड को एक विशेष ढङ्ग से रख दिया गया। सारा यूरेनियम उस जाति का नहीं था जिसके अणुओं को स्वतन्त्र न्यूट्रोन विदीर्ण कर सकते हैं। प्रकृति में जो यूरेनियम मिलता है उसमें तीन प्रकार का यूरेनियम सम्मिलित रहता है—यूरेनियम २३४, यूरेनियम २३५, तथा यूरेनियम २३८। इन्हें वैज्ञानिक परिभाषा में आइसोटोप (Isotope) अर्थात्

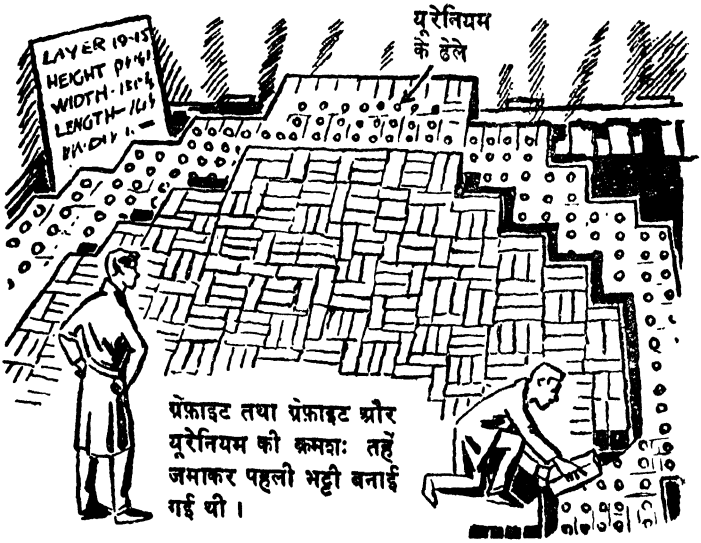

'रासायनिक जोड़ले' कहते हैं। इनकी रासायनिक क्रियाएँ तथा प्रतिक्रियाएँ एक जैसी होती , किन्तु वज़न एक-जैसा नहीं होता। दूसरे शब्दों में आइसोटोप एक ही तत्त्व की विभिन्न जातियाँ होती हैं जिनका वज़न अलग-अलग होता है; और वज़न में यह विभिन्नता इसलिये होती है कि उनके नाभिकों में न्यूट्रोनों की संख्या विभिन्न होती है। किन्तु उनमें प्रोटोनों की

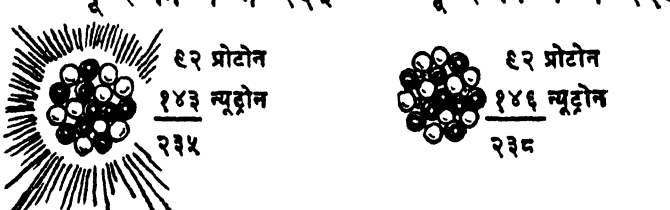

संख्या समान होती है; केवल न्यूट्रोनों की संख्या में ही अन्तर होता है।

यूरेनियम २३४ इतनी थोड़ी मात्रा में विद्यमान होता है कि इसका कोई महत्त्व नहीं ह ता। यूरेनियम का दूसरा आइसोटोप, यूरेनियम २३५, ऐसा होता है कि उसे न्यूट्रोन की 'गोलियाँ' विदीर्ण कर सकती हैं। किन्तु यूरेनियम २३५ की मात्रा भी यूरेनियम २३८ की अपेक्षा बहुत कम होती है। यूरेनियम के प्रत्येक १००० अणुओं में यूरेनियम २३५ के केवल ७ अणु होते हैं। दूसरे शब्दों में यूरेनियम २३८ के १३९ अणुओं के साथ यूरेनियम २३५ का केवल १ अणु विद्यमान होता है। चूंकि प्रकृति में यूरेनियम के ये तीनों जुड़वाँ अणु अर्थात् आइसोटोप साथ-साथ विद्यमान रहते हैं, और उन्हें अलग करना बहुत कठिन है, इसलिये पहली भट्टी में यूरेनियम की ये तीनों जातियाँ विद्यमान थीं।

उपरोक्त ढंग से ग्रेफ़ाइट की ईंटों की तह पर तह जमा दी गईं, और क्रमशः हर तीसरी तह की ईंटों के बीच में यूरेनियम रख दिया गया। कर्मचारियों की दो पालियां एक-दूसरी के बाद लगातार काम करती रहीं। और लगभग दिन-रात, चौबीसों घण्टे, काम होता रहा। वैज्ञानिक बराबर रेडियेशन की मात्रा की जांच करते रहे और उसका नाप लेते रहे। धीरे-धीरे ईंटों का पुंज बढ़ता गया।

किसी भी वैज्ञानिक को इस बात का निश्चित ज्ञान नहीं था कि इससे पूर्व कि भट्टी लगातार काम करती चली जाए, कितना यूरेनियम उसमें रखना होगा, या ईंटों के पुंज को

कितना ऊँचा चिनना होगा। किन्तु वे यह बात निश्चित रूप से जानते थे कि शृङ्खलात्मक प्रतिक्रिया को रोकने का एक साधन अवश्य है। पहले के कुछ प्रयोगों ने यह बात सिद्ध कर दी थी कि जब कोई न्यूट्रोन यूरेनियम के किसी अणु के नाभिक को विदीर्ण करता है तो अणु का कुछ भाग ऊर्जा में परिणत हो जाता है। यह ऊर्जा कुछ तो उष्मा (Heat) के रूप में उत्पन्न होती है और कुछ घातक रेडियेशन (Radiation) के रूप में, जिसको न तो देखा जा सकता है, न छूआ जा सकता है, और न ही सूंघा, सुना या चखा जा सकता है। इस बात ने प्रयोग को खतरनाक बना दिया था। दो बातें अत्यन्त आवश्यक थीं—एक तो कर्मचारियों को रेडियेशन से बचाना, और, दूसरे, भट्टी को नियन्त्रण में रखना। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए 'कैडमियम' (Cadmium) के तीन डंडे काम में लाए गए, क्योंकि कैडमियम एक ऐसा पदार्थ है जो न्यूट्रोनों का अवशोषण कर लेता है। स्वतन्त्र न्यूट्रोनों का अवशोषण करके कैडमियम शृङ्खला को रोक सकता है। यदि कैडमियम के डंडों को भट्टी में रख दिया जाए तो भट्टी लगभग ठप्प हो जाएगी।

उस भट्टी में कैडमियम का एक डण्डा तो ऐसा रखा गया था जो स्व-चलित था। इसका नियन्त्रण बिजली की एक मोटर द्वारा होता था। रेडियेशन के एक विशेष स्तर पर पहुँचने पर यह मोटर उस डण्डे को अन्दर डाल देती थी। एक दूसरे डण्डे को एक रस्सी नियन्त्रित करती थी जिसे एक चर्खी पर लपेटा गया था। एक व्यक्ति को उसके पास खड़ा

कैडमियम स्वतंत्र न्यूट्रोनों का अवशोषण कर लेता है।
इसलिये वे यूरेनियम के अणुओं पर प्रहार नहीं कर पाते।

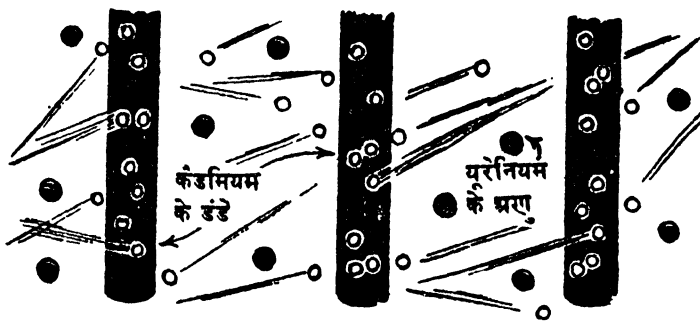

कर दिया गया था और उसके हाथ में एक कुल्हाड़ी दे दी गई थी ताकि शृङ्खलात्मक प्रतिक्रिया को रोकने के लिए यदि दूसरे डण्डे की आवश्यकता पड़ जाए तो वह रस्सी को काट दे। इस डण्डे को वहाँ के कर्मचारियों ने 'ज़िप' का नाम दे दिया था। तीसरे डण्डे को एक कर्मचारी हाथ से डाल और निकाल सकता था।

यह बात प्रकट थी कि इस निस्तब्ध और ज्वाला-रहित भट्टी को सुलगाने वाली चीज़ इसके अन्दर ही थी और वह स्वतः अपना कार्य प्रारम्भ कर देगी। इस भट्टी के 'ईंधन' को सुलगाने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, और न ही कोई दिया-सलाई इसके अन्दर शृङ्खलात्मक प्रतिक्रिया चालू कर सकेगी। वैज्ञानिकों की धारणा थी कि जब यूरेनियम की इतनी मात्रा भट्टी में इकट्ठी हो जाएगी कि प्रत्येक विदीर्ण होते हुए यू-२३५ अणु में से निकले हुए न्यूट्रोनों में से कम से कम एक

स्वतन्त्र न्यूट्रोन एक अन्य यू-२३५ अणु के नाभिक से टकरा जाएगा तो शृङ्खलात्मक प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाएगी। किन्तु प्रश्न यह था कि कर्मचारियों को इस बात का पता कैसे चल सकेगा कि भट्टी चालू हो गई है। उन्हें यह कैसे ज्ञात हो सकेगा कि कब स्वतन्त्र न्यूट्रोन यूरेनियम के अणुओं के साथ टकरा रहे हैं और अधिकाधिक तीव्र गति के साथ उन्हें विदीर्ण कर रहे हैं। अतः इस बात का ज्ञान प्राप्त करने के लिए भट्टी के अन्दर ही न्यूट्रोनों की संख्या गिनने वाले यन्त्र लगा दिये गए जिनकी सूइयाँ बाहर लगा दी गईं। इन यन्त्रों की ध्वनि से तथा सूई के घुमावों से कर्मचारियों को पता लग सकता था कि भट्टी के अन्दर कितनी रेडियो-सक्रियता है।

इस भट्टी का निर्माण नवम्बर सन् १९४२ में प्रारम्भ किया गया था। पहली दिसम्बर, सन् १९४२ तक भट्टी की जांच-पड़ताल कर ली गई, जिससे यह निश्चय हो गया कि अगले दिन जब कैडमियम के डंडे हटाए जाएँगे तो इस बात की पूरी आशा की जा सकती है कि शृंखलात्मक प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाएगी।

२ दिसम्बर का प्रभात आया। सब वैज्ञानिक और कर्मचारी तैयार थे; उनके हृदय के तार खिचे हुए थे। एक कर्मचारी 'ज़िप' के पास कुल्हाड़ा लेकर खड़ा हुआ था; एक अन्य व्यक्ति कैडमियम के तीसरे डंडे को काम में लाने के लिए तैयार खड़ा था। जब तैयारी पूर्ण हो गई तो फ़र्मी के आदेश से पहला डंडा, जो स्व-चलित था, भट्टी में से निकाल दिया गया। फिर दूसरा डंडा 'ज़िप' भी बाहर खींच लिया

गया। इसके बाद तीसरे डंडे को एक-एक इंच करके धीरे-धीरे बाहर निकाला गया। मापक-यन्त्रों में ध्वनि उत्पन्न हुई और सूइयों से प्रकट हो गया कि भट्टी में रेडियेशन बड़े ज़ोरों से चल रहा है।

लगभग ४० व्यक्तियों ने प्रातःकाल का सारा समय उत्तरोत्तर बढ़ते हुए भावावेश के साथ इस प्रयोग का प्रेक्षण करने में व्यतीत किया। उसके बाद फ़र्मी ने सब को भोजन करने की आज्ञा दी; वह जानता था कि अब कर्मचारियों के लिये आराम की पूरी आवश्यकता है। भोजन करने के बाद जब सब कर्मचारी पुनः भट्टी के पास एकत्रित हो गये तो फ़र्मी पुनः और परीक्षण करने में सँलग्न हो गया। जब डंडे हटाए गए तो न्यूट्रोनों की 'गोलियाँ' अपने आस-पास के अणुओं से टकराईं, जिससे अणु विदीर्ण हो गए और उनमें से छोटे अणु,

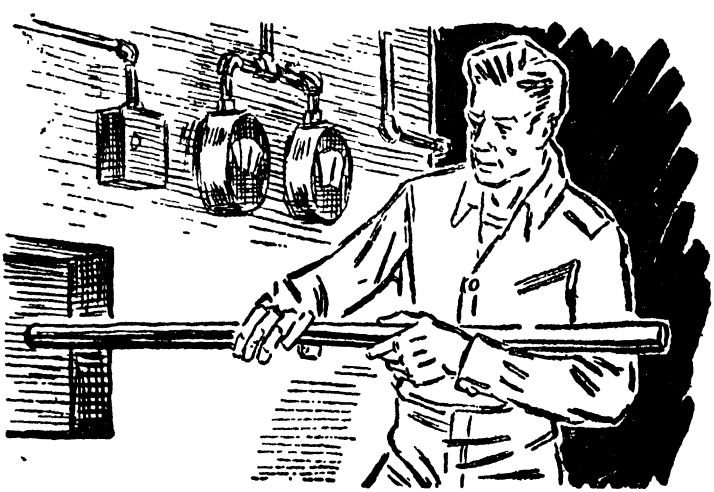

रेडियेशन, तथा अणु-खंड उत्पन्न हो गये। इन्हीं खंडों में काफ़ी संख्या में न्यूट्रोन थे, जो स्वतन्त्र होकर अन्य अणुओं को विदीर्ण करने लगे। दोपहर के ३ बजकर २५ मिनट पर मापक-यन्त्रों में से आने वाली बज़-बज़ की आवाज़ ने तथा ऊँचे अंकों तक घूमने वाली सूइयों ने प्रथम शृंखलात्मक प्रतिक्रिया की मानो घोषणा की। अट्ठाईस मिनट तक आणविक भट्टी में अणु विदीर्ण होते रहे। उसके बाद फ़र्मी ने कैडमियम के डंडों को भट्टी में यथा-स्थान रखने का आदेश दिया ताकि ये डंडे न्यूट्रोन की 'गोलियों' को, जो भट्टी के अन्दर १०,००० मील प्रति सैकिंड की गति से उड़ रही थीं, अपने अन्दर पकड़ सकें। डडों को भट्टी के अन्दर रखते ही न्यूट्रोन उनसे टकराने लगे और डंडों ने उनका अवशोषण कर लिया। फलतः शृंखलात्मक प्रतिक्रिया रुक गई। उष्मा और रेडियेशन की ख़तरनाक मात्रा अब भट्टी में से निकलनी बन्द हो गई।

इस प्रथम अणविक भट्टी में जितनी ऊर्जा का उत्पादन हुआ था, उसकी मात्रा यद्यपि इतनी भी नहीं थी जितनी एक छोटे-से बिजली के बल्ब को जलाने के लिए आवश्यक होती है, फिर भी यह एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण अवसर था। आणविक ऊर्जा सम्बन्धी सारे प्रोग्राम को चालू करने की दिशा में शायद यह सबसे महत्त्वपूर्ण क़दम था।

अब आप पुनः इस अध्याय के प्रारम्भ में दी गई विख्यात टेलीफ़ोन-वार्ता की ओर ध्यान दें :—

"इटैलियन इवाबाज नई दनियाँ में उतर गया है।"

(अर्थात् फ़र्मी शृंखलात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने में सफल हो गया है, जो संसार के इतिहास में एक नई चीज़ है।)

"वहाँ के निवासियों ने कैसा व्यवहार किया ?" (क्या प्रतिक्रिया नियन्त्रण में है ?)

"अत्यन्त मित्रता-पूर्ण।" (प्रतिक्रिया नियन्त्रण में है।)

इस भट्टी में यूरेनियम के अणुओं पर क्या प्रतिक्रिया हुई, इसका ठीक-ठीक ज्ञान आज तक किसी को नहीं है; न ही आज की नवीनतम भट्टियों में अणुओं पर होने वाली प्रतिक्रिया का ही किसी को ज्ञान है। यह प्रतिक्रिया एक रहस्य है, क्योंकि किसी भी व्यक्ति को यह ठीक-ठीक पता नहीं है कि वह शक्ति किस

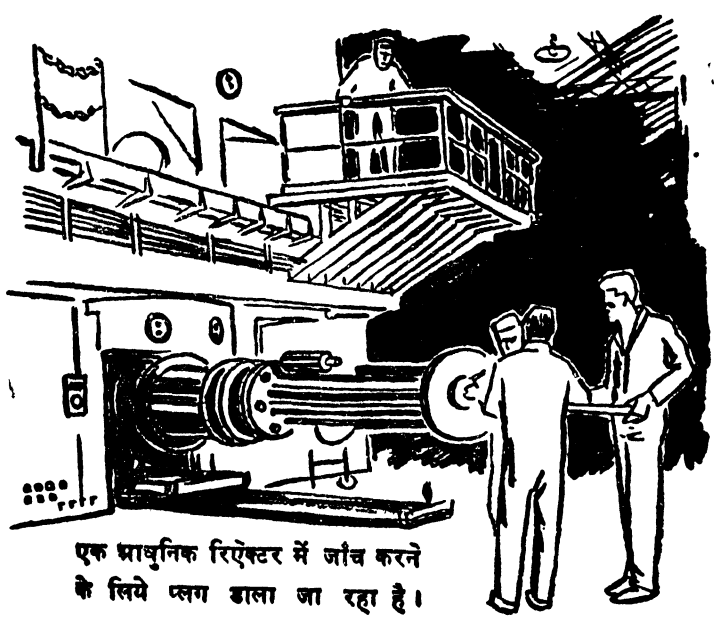

एक आधुनिक रिऐक्टर में जाँच करने के लिये प्लग डाला जा रहा है।

प्रकार की है जो अणुओं के नाभिकों के विभिन्न कणों को बाँध कर इकट्ठा रखती है। किन्तु उस पहली भट्टी के बाद अमरीका तथा अन्य देशों में बहुत बडी-बड़ी आणविक भट्टियों का विभिन्न उद्देश्यों से निर्माण किया गया है। इन भट्टियों को 'न्यूक्लियर रिऐक्टर' (Nuclear Reactor) कहते हैं। ये भट्टियां कई प्रकार की हैं, जिनकी विभिन्नता केवल उनके आकार पर ही निर्भर नहीं करती, वरन् उनमें जिस 'ईंधन' का प्रयोग किया जाता है, उसकी जाति तथा उसकी क्वालिटी पर भी निर्भर करती है। रिऐक्टर किस प्रकार का बनाया जाए, इसका निर्णय इस बात पर निर्भर करता है कि वैज्ञानिक उस रिऐक्टर में से क्या चीज़ उत्पन्न करना चाहते हैं।

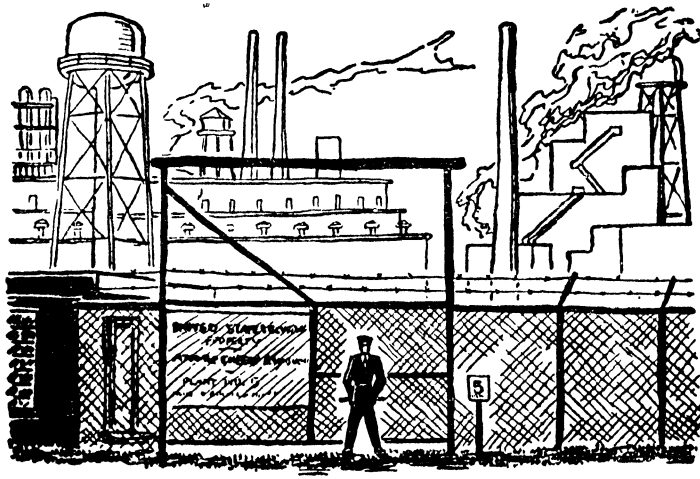

: ५ :

सुरक्षित द्वारों के पीछे यूरेनियम

संयुक्त-राज्य अमरीका के वाशिंगटन राज्य में, कोलम्बिया नदी के किनारे, एक विशाल अणु-कारख़ाना फैला हुआ है। यह फैलाव में आधे रहोड द्वीप के बराबर है। इसे लोग संसार के सात आश्चर्यों में से एक मानते हैं। यहां 'हैनफ़ोर्ड एटॉमिक प्रौजैक्ट' की भट्टियों में 'जनरल इलैक्ट्रिक कम्पनी' तथा 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' मानव द्वारा निर्मित एक नए तत्त्व 'प्लूटोनियम' का उत्पादन करते हैं।

प्लूटोनियम एक महान् राष्ट्रीय साधन है जिसके ऊपर

न्यूट्रोन की गोलियों का प्रहार करके विराट परिमाण में ऊर्जा निकाली जा सकती है। और फिर इस ऊर्जा को सहस्रों वर्षों तक रखा जा सकता है, क्योंकि इसका 'अर्ध-जीवन' २४,००० वर्ष का है। इस लम्बी अवधि में इस ऊर्जा की (चाहे उसका परिमाण कितना भी क्यों न हो) केवल आधी मात्रा नष्ट होगी। प्लूटोनियम को युद्ध के समय में देश की सुरक्षा के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है, तथा शान्ति-काल में इससे मनुष्य जाति की महान् सेवा भी कराई जा सकती है।

यूरेनियम को इस कारखाने के अन्दर लेजाकर एक आणविक भट्टी (रिऐक्टर) में पकाया जाता है, यहां तक कि उसका एक अंश प्लूटोनियम के रूप में परिणत हो जाता है।

आइये यूरेनियम को हैनफ़ोर्ड की रहस्यपूर्ण भट्टियों में पकता हुआ देखते हैं। यह देखिये, यहां किसी विशाल दुर्ग

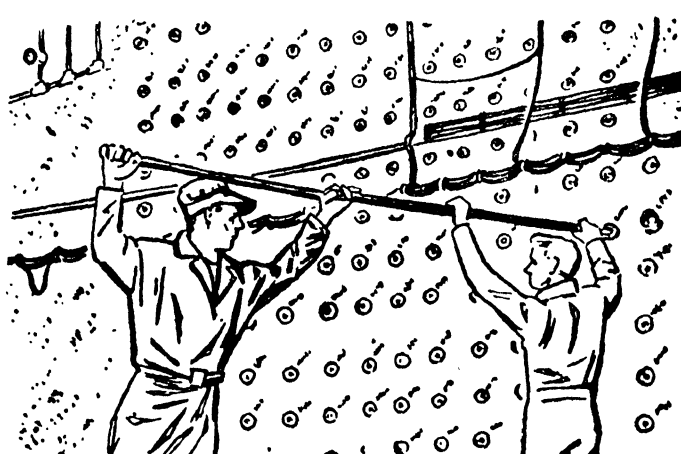

जैसी, कंकरीट और सीसे की बनी हुई, बड़ी-बड़ी दीवारें खड़ी हुई हैं। ये दीवारें उस घातक रेडियेशन से कर्मचारियों की रक्षा करती हैं जो अणुओं के विदीर्ण होने से उत्पन्न होता है। पीछे दिये गए चित्र में एक भट्टी की दीवार को देखिये। यह दीवार कई मंज़िल ऊंची है और इसमें बहुत-से छेद बने हुए हैं। प्रत्येक छेद का आकार चांदी के रुपये से थोड़ा बड़ा है। इन छेदों में से कर्मचारी लोग यूरेनियम से भरे हुए बर्तन अन्दर फेंकते जाते हैं। जब भट्टी पूर्ण हो जाती है तो इन छेदों को सीसे की डाटों से बन्द कर दिया जाता है, और धातु की सलाखें बाहर निकाल ली जाती हैं। बस उसी क्षण स्वतन्त्र न्यूट्रोन इधर-उधर भागने-दौड़ने लगते हैं, और इनमें से कुछ न्यूट्रोन दूसरे अणुओं के नाभिकों से टकराने लगते हैं। बस समझ लीजिये कि शृंखलात्मक प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो गई है और अब भट्टी काम कर रही है।

इस कारख़ाने में न तो कहीं बड़ी-बड़ी मशीनें चलती हैं, न धुआं पैदा होता है, और न ही कहीं आग सुलगती है। केवल उन पम्पों की हल्की-हल्की आवाज़ सुनाई देती रहती है जो अन्दर की उष्मा का अवशोषण करने के लिए भट्टी के अन्दर पानी फेंकते रहते हैं। सफेद कोट पहने हुए कर्मचारी—स्त्रियां और पुरुष—कन्ट्रोल-रूम में बैठकर संकेतात्मक हरी और लाल रोशनियों को तथा डायलों को देखते रहते हैं और यंत्रों में हेर-फेर करते रहते हैं।

महीनों तक 'पकाने' के बाद यूरेनियम के कराड़ों-अरबों अणु प्लूटोनियम में परिणत हो जाते हैं, क्योंकि उनके नाभिकों में न्यूट्रोनों का संगलन कर दिया गया है। जब भट्टी में से प्लूटोनियम के बर्तनों को धकेलकर दूसरी ओर से बाहर निकाला जाता है और उन्हें एक ३० फुट गहरी नहर में डाल दिया जाता है तो वह पहले जैसा ही पदार्थ दिखाई देता है, किन्तु अब यह "गर्म" अथवा रेडियो-सक्रिय हो गया है और इसमें रेडियेशन निकलने लगा है जो मानव के लिए परम घातक है। इस तीव्र रेडियेशन के कारण नहर में पड़े हुए प्रत्येक बर्तन के चारों ओर एक सुन्दर नीली दीप्ति दिखाई देती है।

अब इसके बाद इस पदार्थ को उठाने, रखने अथवा इस पर कोई भी प्रक्रिया करने का काम केवल मशीनी हाथों द्वारा

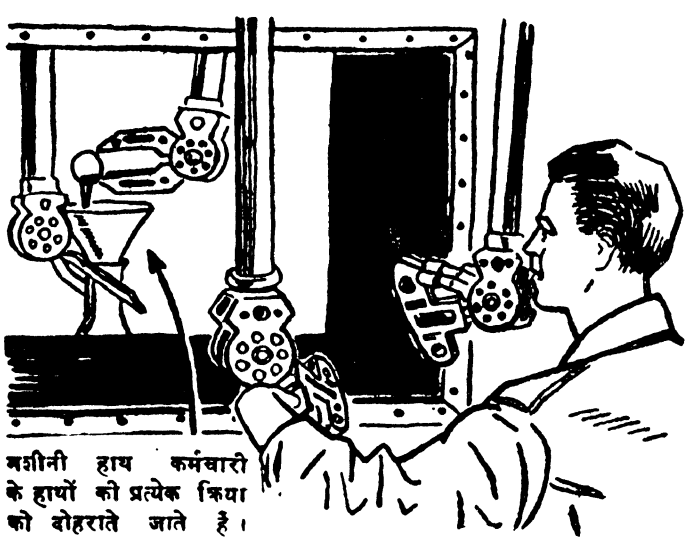

मशीनी हाथ कर्मचारी के हाथों की प्रत्येक क्रिया को दोहराते जाते हैं।

किया जाता है। इन बर्तनों के आस-पास की हवा में सांस लेना भी कर्मचारियों के लिए खतरनाक होता है। काफ़ी दूरी से मशीनों आदि की सहायता से शुद्ध प्लूटोनियम को रेडियो-सक्रिय कूड़े से अलग कर लिया जाता है। फिर उसे किसी गुप्त स्थान पर रख दिया जाता है जहां से अमरीकन सरकार आवश्यकतानुसार इसे निकालती रहती है।

खानों में से आरम्भ में जो यूरेनियम निकाला गया था, उसका कुछ भाग किन-किन प्रक्रमों में से निकलकर कहां से कहां तक पहुंचा, इसकी कहानी आपको ऊपर सुनाई गई है। उस यूरेनियम के दूसरे भाग की एक दूसरी यात्रा भी हो सकती है—और यह यात्रा भी उतनी ही विलक्षण और कौतुकपूर्ण होती है जितनी पहले भाग की यात्रा।

खानों में से निकले हुए यूरेनियम का कुछ भाग उन विशेष प्रकार के कारखानों में से किसी एक में भेज दिया जाता है, जिन्हें 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' ने खोला हुआ है और जहां यू–२३५ को यू–२३८ से पृथक् किया जाता है। यह प्रक्रम अत्यन्त जटिल होता है, क्योंकि यूरेनियम की इन दोनों जातियों की रासायनिक प्रतिक्रियाएं समान होती हैं। इन्हें पृथक् करने में वैज्ञानिक केवल इस बात का सहारा लेते हैं कि यूरेनियम की दोनों जातियों के वज़न में सूक्ष्म-सा अन्तर होता है।

यूरेनियम के इन आइसोटोपों, अर्थात् जोड़लों, को पृथक् करने का प्रक्रम इतना पेचीदा होता है कि आप उसका अनुमान भी नहीं लगा सकते। अमरीका के टैनैस्सी प्रान्त में 'ओक-

रिज' नामक स्थान पर एक कारख़ाना है जहां पृथक्करण-प्रक्रम की कुछ क्रियाएं सम्पन्न होती हैं। इस कारखाने के पम्पों को चलाने के लिये एक दिन में इतनी बिजली प्रयुक्त होती है जितनी न्यूयार्क जैसे विशाल नगर के आधे भाग की आवश्यकता को पूरी कर सकती है। इस प्रक्रम को सम्पन्न करने में अनेकों विशाल भवन, पाइप और तार, जिनकी लम्बाई मीलों तक जा पहुंचती है, तथा अत्यन्त पेचीदा मशीनें काम में आती हैं और अनेकों कठोर परिश्रम करने वाले कर्मचारी और वैज्ञानिक दिन-रात काम में जुटे रहते हैं।

लगभग एक मील लम्बे और चार मंज़िल ऊंचे भवन के अन्दर यूरेनियम और फ्लोरीन मिश्रित गरम गैस को मुहर-बंद पाइपों में से पम्पों के द्वारा अन्दर फेंका जाता है। साधारण धातुओं के पाइप यह कार्य नहीं कर सकते, क्योंकि यह गैस इतनी क्रियाशील एवं शक्तिशाली होती है कि समस्त साधारण धातुओं को खा जाती है। कुछ धातु तो इस गैस के सम्पर्क में आते ही जल भी उठते हैं। शीशे को भी यह गैस छलनी कर देती है। इसलिये इस गैस को वश में रखने के लिये विशेष पदार्थों के पाइप बनाने पड़े हैं। और इन्हीं गुप्त पदार्थों की सहायता से यू-२३८ को, जिसका वज़न यू-२३५ से अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में अधिक होता है, यू-२३५ से पृथक् किया जाता है।

पृथक्करण-कारखाने में जितनी भी वस्तुओं को काम में लाया जाए वे सब ऐसी होनी चाहिएं कि उनमें से गैस चू न सके, क्योंकि गैस अत्यन्त विषैली होती है। जिन लोगों पर

पम्पों को तथा नियंत्रकों (Controls) को क्रियाशील रखने का उत्तरदायित्व होता है वे निरन्तर साइकिलों पर घूमते हुए यह देखते रहते हैं कि सब काम ठीक-से चल रहा है या नहीं।

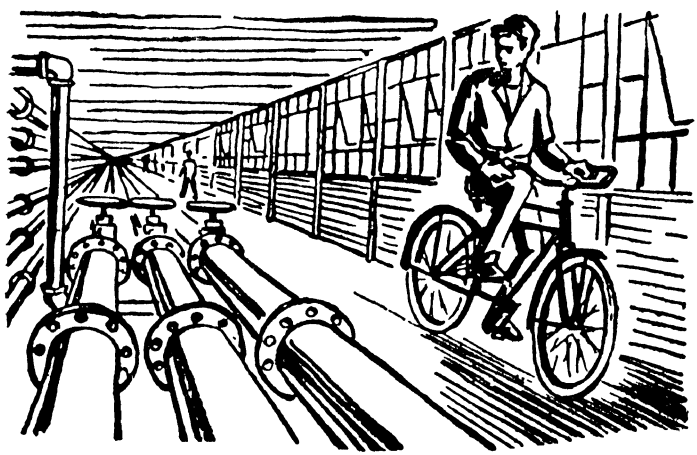

मीलों लम्बाई के पाइपों में से यात्रा करते हुए गैस ऐसी अनेकों छलनियों में से निकलती है जिनके अन्दर छिद्र इतने बारीक होते हैं कि प्रत्येक छिद्र का व्यास एक इंच के २० लाखवें भाग से भी कम होता है। ये छिद्र गैस को छानकर यू-२३८ और यू-२३५ को अलग-अलग कर देते हैं, क्योंकि अपेक्षाकृत हल्के यू-२३५ के अणु छिद्रों में से पहले बाहर निकल आते हैं। यू-२३५ से लदी हुई गैस को तुरन्त पम्पों द्वारा अलग खींच लिया जाता है।

यू-२३५ से लदी हुई इस गैस को, जो अभी तक फ़्लोरीन के साथ मिली हुई है, रसायनशास्त्री फ़्लोरीन से अलग करके

पुनः यूरेनियम में परिणत कर देते हैं। इस धातु को भावी उपयोग के लिये गुप्त स्थान में रख दिया जाता है।

यदि इस यू-२३५ को काम में लाने की आवश्यकता न पड़े तो यह बहुत दीर्घकाल तक रखी रह सकती है। इसके झड़ने एवं नष्ट होने की गति इतनी धीमी होती है कि इसके किसी भी परिमाण की आधी मात्रा ४० लाख वर्षों में नष्ट होगी।

यू-२३५ तथा प्लूटोनियम को, उनके अत्यन्त दीर्घ 'अर्ध-जीवन' के कारण, अमरीका के बहुत-से लोग अपने राष्ट्र की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण निधि मानते हैं। इन दोनों पदार्थों के अन्दर ऊर्जा का असीम भंडार निहित है जिसे हम अपनी इच्छा एवं आवश्यकता के अनुसार जब चाहें निकाल सकते हैं—चाहे तो क्षणभर में ही अणु-बम का विस्फोट करके, चाहे शान्ति-काल में प्रयोग करने के लिये नियंत्रित रूप में।

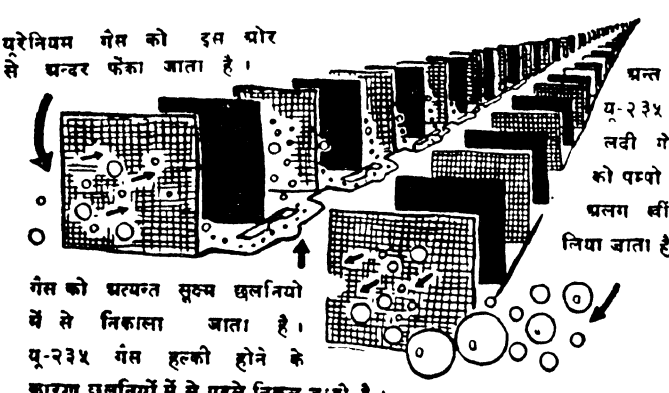

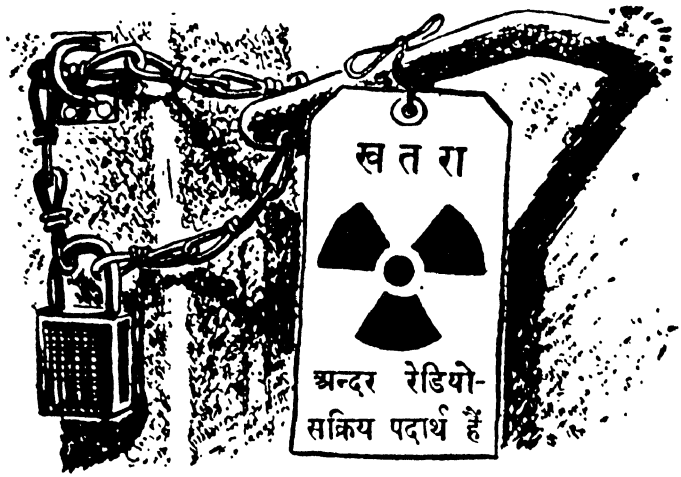

: ६ :

रेडियो-सक्रियता से ख़तरा और उससे बचाव

किसी आणविक भट्टी की राख को साधारण ढंग से दूर नहीं किया जा सकता, क्योंकि वह "गर्म" एवं रेडियो-सक्रिय होती है। एक आणविक भट्टी इतना रेडियेशन उत्पन्न कर देती है जितना कई टन रेडियम से उत्पन्न होता है।

कई प्रकार के अणुओं की राख की रेडियो-सक्रियता शीघ्र ही नष्ट हो जाती है, इसलिये ऐसी राख को कुछ दिनों के लिये सुरक्षित जगहों पर डाल दिया जाता है, और जब

वह 'ठण्डी' हो जाती है तो उसे साधारण कारखानों के कूड़े-कचरे की तरह फेंक दिया जाता है। कई प्रकार की राख ऐसी भी होती है जो पानी मिलाने से हल्की होती चली जाती है, और हल्की होती-होती अन्त में बिल्कुल निरापद हो जाती है।

कुछ अन्य उद्योगों के कूड़े-कचरे को लोग वर्षों से बड़ी लापरवाही के साथ नदी-नालों में बहाते रहे हैं। उस कूड़े-कचरे ने उन नदी-नालों के पानी को खराब कर दिया है, जिसके फल-स्वरूप कई समस्याएं खड़ी हो गई हैं। किन्तु आणविक-ऊर्जा सम्बन्धी उद्योग के प्रारम्भिक काल से ही इस के कूड़े-कचरे एवं राख को सावधानी-पूर्वक ठिकाने लगाने का कार्य एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य समझा गया है, क्योंकि कोई भी व्यक्ति टूटते हुए अणुओं में से निकलने वाले घातक रेडियेशन को न तो देख सकता है, न सूंघ सकता है, न सुन सकता है और न किसी और ज्ञानेन्द्रिय द्वारा उसका पता लगा सकता है।

जब लोगों ने अणुओं को विदीर्ण करना सीखा, उससे पहले रेडियो-सक्रिय कूड़े को ठिकाने लगाने की समस्या थी ही नहीं, क्योंकि पिछले पचास वर्षों में सारे संसार में कुल मिला-कर केवल ३ पौंड रेडियम उपलब्ध हो सका है। आणविक ऊर्जा के उद्योग की प्रगति और प्रसार के साथ-साथ आणविक राख की मात्रा भी बढ़ती चली गई है।

रेडियो-सक्रिय राख डालने के लिये धरती के गर्भ में कुछ तालाब बनाए गए थे, किन्तु ये तालाब बड़ी तीव्र गति से भरते जा रहे हैं। कुछ आणविक कचरे को जलाया

भी जा सकता है, किन्तु रेडियो-सक्रिय गैसों को वायुमण्डल में फैलने से रोकने के लिये पूरी सावधानी बरतनी पड़ती है। कुछ रेडियो-सक्रिय कचरे को कंकरीट के ढोलों के बीच में भर कर और उन ढोलों का मुंह अच्छी तरह बन्द करके समुद्र में फेंक दिया जाता है। रेडियो-सक्रियता इन ढोलों से बाहर नहीं निकल सकती और साथ ही वज़नदार होने के कारण ये ढोल समुद्र की तह में समा जाते हैं। ये ढोल फेंकने के लिये भी समुद्र के कुछ विशेष भाग नियत कर लिए गए हैं।

एक विशेष प्रकार की मिट्टी भी कुछ आणविक कचरे का अवशोषण करने के लिये काम में लाई जाती है। बाद में इस मिट्टी की ईंटें पका ली जाती हैं और इन ईंटों को पृथ्वी में गाड़ दिया जाता है।

हैनफ़ोर्ड स्थान के निकट, जहां प्लूटोनियम के उत्पादन का कारखाना है, कोलम्बिया नदी बहती है। यह नदी जहां एक

ओर भट्टी की गर्मी को शान्त करने का काम करती है, वहां, दूसरी ओर, वह कुछ रेडियो-सक्रिय कचरे को बहा ले जाने का कार्य भी करती है। इस नदी का हज़ारों गैलन ठण्डा पानी प्रति मिनट पंपों द्वारा भट्टी के अन्दर फेंका जाता है। जैसे-जैसे पानी कारख़ाने के अन्दर घूमता है, न्यूट्रोन पानी के अन्दर स्थित धातुओं से टकराते हैं। फलतः पानी थोड़ी-सी मात्रा में रेडियो-सक्रिय हो जाता है। इसलिए जब यह पानी भट्टी में से बाहर निकलता है तो उसे फेंकने के कार्य में उतनी ही सावधानी बरतनी पड़ती है जितनी अन्य आणविक कूड़े-कचरे को फेंकने के लिये। इस पानी को, दोबारा नदी में डालने से पहले, बड़े-बड़े जलाशयों में भर देते हैं। कुछ समय के बाद इसके अन्दर का रेडियो-सक्रिय पदार्थ गल-सड़ जाता है।

जब इस पानी को दोबारा नदी में डालते हैं तो इसमें रेडियेशन की केवल बहुत थोड़ी मात्रा शेष रह जाती है। हैनफ़ोर्ड में वैज्ञानिक इस बात की निरंतर जांच कर रहे हैं कि रेडियेशन की इस सूक्ष्म-सी मात्रा का मछलियों तथा नदी में रहने वाले अन्य जीवों पर कोई प्रभाव पड़ता है या नहीं।

एक विशेष प्रकार की नाव नदी में इधर से उधर भ्रमण करती रहती है, जिसके नाविक नदी के पानी के, मछलियों के, नदी के अन्य जीवों के, तथा वनस्पतियों के नमूने एकत्रित करते रहते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ लोग रबड़ के जूते तथा विशेष प्रकार के रक्षात्मक कपड़े पहनकर नदी के छिछले भागों में से नमूने एकत्रित करते रहते हैं। इन नमूनों को तुरन्त प्रयोग-शालाओं में भेज दिया जाता है, जहां यह तय करने के लिये

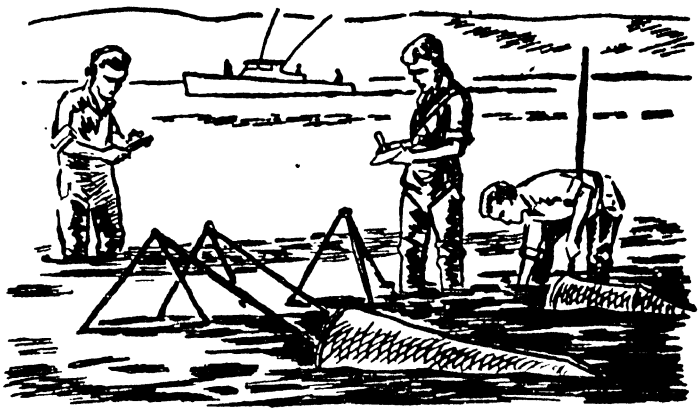

उनकी जांच की जाती है कि उन्होंने रेडियो-सक्रियता की कितनी मात्रा का अवशोषण किया है ।

इन परीक्षणों ने यह प्रमाणित कर दिया है कि रेडियो-सक्रियता की उस सूक्ष्म-सी मात्रा से, जो नदी के पानी में प्रविष्ट हो जाती है, नदी के जीवों को कोई हानि नहीं पहुँचती । किंतु यह तय किया गया है कि नदी में से मछलियों आदि के नमूने एकत्रित करके उनकी जांच करने का कार्य निरन्तर चालू रखा जाए, ताकि ऐसा न हो कि यह कार्य छोड़ देने से, कुछ समय के बाद, अचानक नदी में रेडियो-सक्रियता की मात्रा बढ़ जाने का पता लगे और उस समय यह बात कोई परेशानी खड़ी कर दे ।

भट्टी में से निकलने वाले समस्त कूड़े-कचरे को ठिकाने लगाने के लिए किसी एक ही ढंग को प्रयोग में नहीं लाया जाता, क्योंकि रेडियो-सक्रिय वस्तुओं से छुटकारा पाने का ढंग

उस वस्तु की जाति, तथा उसके अन्दर रेडियो-सक्रियता की मात्रा और जीवन-अवधि पर निर्भर करता है। जहां एक ओर कुछ रासायनिक द्रव्य लाखों वर्षों तक 'गर्म' रहते हैं, वहां, दूसरी ओर, कुछ ऐसे द्रव्य भी होते हैं जो एक क्षण के भी कुछ अंश में ही 'ठंडे' हो जाते हैं। जब कारखाने का कोई पुराना और अस्थायी भवन 'गर्म' हो जाता है तो उस पर रोगन कर दिया जाता है ताकि यदि कुछ रेडियो-सक्रिय पदार्थ उसके साथ ढीले-तौर पर चिमटे हुए हों तो वे आस-पास फैलने से रुक जाएं। फिर उस भवन का एक-एक तख्ता अलग-अलग उतार कर धरती में गाड़ दिया जाता है। ऐसे भवन में रहने वाले चूहे भी रेडियो-सक्रिय हो सकते हैं, इसलिए ऐसे भवन के सब चूहों को भी सावधानी-पूर्वक नष्ट कर दिया जाता है। अगले चित्र में एक व्यक्ति एक ऐसी प्रयोगशाला में कचरे को ठिकाने

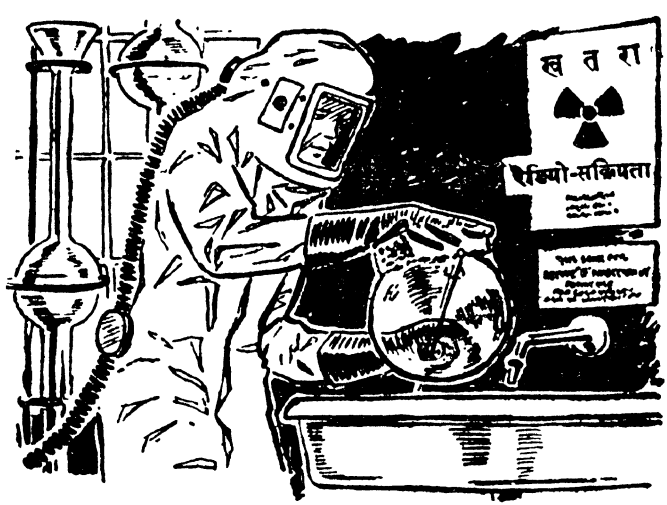

लगा रहा है, जहाँ 'गर्म' पदार्थ काम में लाए जाते हैं। उसका सारा शरीर रक्षात्मक कपड़ों से ढका हुआ है, और उसने सिर पर एक ऐसा टोपा पहन रखा है जिसमें आँखों के सामने प्लास्टिक की बनी हुई एक खिड़की लगी हुई है। प्लास्टिक का बना हुआ एक विशेष प्रकार का कपड़ा उसके सिर और कंधों की रक्षा करता है। रबड़ के दस्ताने उसके हाथों की रक्षा करते हैं, और उसके पांव एक ऐसे जूते के अन्दर रहते हैं जो घुटने तक आते हैं। सांस लेने के लिए उसे टोपे के अन्दर एक नली के द्वारा ताजा हवा पहुंचाई जाती है। कमरे की खुली हवा खतरनाक हो सकती है : सम्भव है कि उसके अन्दर रेडियो-सक्रिय धूल के कण मिल गए हों।

कुछ रेडियो-सक्रिय द्रव डालने के लिए उसके समीप ही एक 'गर्म बर्तन' रखा रहता है। किन्तु कुछ दूसरे द्रवों को वह एक विशेष नाली में डालता रहता है जो उन द्रवों को एक विशेष टैंक तक ले जाती है। उस टैंक में उन द्रवों को उस समय तक रखा जाता है जब तक कि उनका खतरनाक रेडियेशन नष्ट नहीं हो जाता।

'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' ने कुछेक संस्थानों को अस्पतालों, प्रयोगशालाओं तथा कारखानों से 'गर्म' कचरे को उठाकर ले जाने का काम सौंप रखा है। ये संस्थान आणविक कचरे को उठाने की मजदूरी प्रति ५-गैलन पीपे के हिसाब से लेते हैं। उनके मोटर-ठेले नियत दिन नियमित रूप से कचरा उठाने आते हैं। आगे की सीट के पास एक यंत्र लगा हुआ होता है जो यह संकेत देता रहता है कि पीपों में से रेडियेशन की

ख़तरनाक मात्रा तो नहीं निकल रही ।

जिन सरकारी एवं निजी कारखानों में से रेडियो-सक्रिय कचरा निकलता है, उनके आस-पास के क्षेत्र की जांच स्वास्थ्य विभाग के कर्मचारी निरन्तर करते रहते हैं, यहां तक कि इन कारखानों में से निकलने वाली वायु को भी वातावरण में जाने से पहले शुद्ध किया जाता है, ताकि ऐसा न हो कि दूषित वायु रेडियेशन की खतरनाक मात्रा को वातावरण में फैला दे और इससे मनुष्यों, पशु-पक्षियों एवं पेड़-पौधों को हानि पहुंच जाए,

उदाहरण के तौर पर 'ब्रुकहेवन नैशनल लैबोरेट्री' (ब्रुक-हेवन की राष्ट्रीय प्रयोगशाला) में १६ स्थान ऐसे बने हुए हैं जहाँ कर्मचारी वायु में रेडियो-सक्रियता की निरन्तर जाँच करते रहते हैं । यदि सुरक्षित मात्रा से अधिक रेडियो-सक्रियता वायु में हो जाए तो उसी समय प्रयोगशाला की आणविक भट्टी को बन्द कर दिया जाता है ।

प्रयोगशाला के अन्दर आपको लाल कालर लगे हुए, सुरक्षात्मक कपड़े पहने हुए, एक व्यक्ति मिलेगा जो प्रयोगशाला के फर्श पर एक यंत्र इधर से उधर घुमाता रहा होगा । यदि फर्श पर कोई रेडियो-सक्रिय वस्तु गिर पड़ी हो तो यह यंत्र उसे निर्दिष्ट कर देता है । इस यंत्र को 'फिडो' (Fido) कहते हैं । यह यंत्र और कुछ नहीं होता, केवल गेइगर-मापक यंत्र होता है जिसे पहियों पर कस दिया जाता है और जिसे कर्ण-फ़ोन(Earphone) के साथ जोड़ दिया जाता है । उस यंत्र को फर्श पर घुमाने वाला यंत्र में आने वाले शब्द को निरन्तर सुनता रहता है । यदि यह शब्द बार-बार आने लगे तो

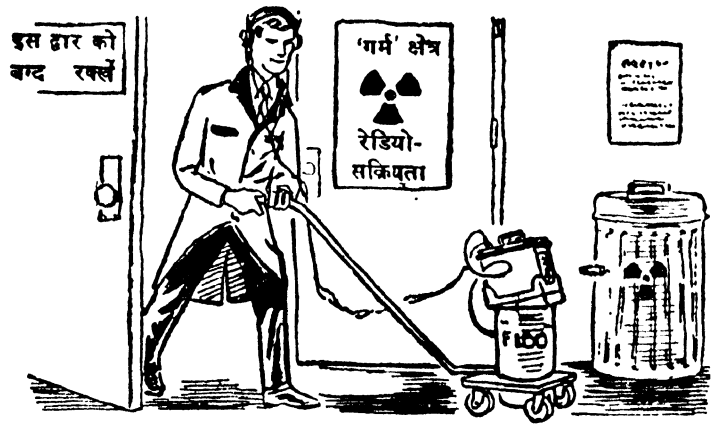

कर्मचारी समझ जाता है कि उस स्थान पर कोई रेडियो-सक्रिय वस्तु गिरी हुई है।

आणविक-ऊर्जा-सम्बन्धी योजना में इस बात का भी गहन अनुसंधान सम्मिलित है कि यह पता लगाया जाए कि रेडियो-सक्रियता की कितनी मात्रा निरापद होती है, तथा रेडियो-सक्रिय कचरे को ठिकाने लगाने के क्या-क्या अधिकाधिक अच्छे उपाय हो सकते हैं।

आणविक भट्टी में से निकलने वाले कचरे में कई बार बड़े मूल्यवान् रेडियो-आइसोटोप मिले हुए होते हैं। ये विभिन्न मूल-तत्वों के वे रेडियो-सक्रिय कण होते हैं जो आणविक भट्टी में 'गर्म' हो जाते हैं।

ज्यों-ज्यों संसार में आणविक ऊर्जा का शान्तिपूर्ण उपयोग बढ़ता जा रहा है, विदीर्ण होने वाले अणु प्रतिवर्ष अधिकाधिक जगहों में अपनी किरणें फैलाते जा रहे हैं। रेडियो-सक्रिय

पदार्थों के साथ सीधे तौर पर काम करने वाले लोगों की संख्या नित्य-प्रति बढ़ती जा रही है। कुछ लोग सीधे 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' के कारखानों में काम करते हैं तो अन्य कुछ लोग हस्पतालों, अनुसंधान-प्रयोगशालाओं तथा विभिन्न उद्योगों में रेडियो-आइसोटोपों के सम्पर्क में आते हैं।

हो सकता है कि आप भी निकट-भविष्य में रेडियो-सक्रिय पदार्थों के सम्पर्क में आने वाला कोई कार्य करें। उनकी घातक किरणों से आपका बचाव किस तरह होगा ?

अमरीका के "एटॉमिक इनर्जी कमीशन' का जहां एक ओर यह काम है कि वह युद्ध छिड़ने पर आणविक आक्रमण से देश की रक्षा करे, वहां, दूसरी ओर, उसके जिम्मे यह भी काम है कि वह अपने कर्मचारियों का तथा उन व्यक्तियों का, जिन्हें वह आइसोटोप देता है, विदीर्ण होते हुए अणुओं में से निकलने वाली किरणों से बचाव करे। विज्ञान में एक नई शाखा का उद्भव हो गया है जिसे 'स्वास्थ्य-भौतिकी' (Health Physics) कहते हैं। विज्ञान की यह शाखा बचाव के उपयुक्त एवं उचित साधन और मानक निर्धारित करती है। स्वास्थ्य-भौतिकी विज्ञान में निपुण व्यक्ति लोगों को रेडियेशन से बचने के उपाय बतलाते हैं। वे रेडियो-सक्रियता वाले उद्योगों में सुरक्षित रीति से काम करने का ढंग निकालते रहते हैं, रेडियो-सक्रियता के प्रभाव से बचने के उपाय खोजते रहते हैं और आवश्यकतानुसार लोगों को चेतावनी भी देते रहते हैं। वे लोग इस बात की जांच भी करते रहते हैं कि मनुष्य पर रेडियेशन के प्रभाव का क्या परिणाम हो सकता है। ये

वैज्ञानिक यह भी तय करते हैं कि किस मात्रा तक की रेडियेशन में अपने आप को खुला रखना संकट-रहित हो सकता है। रेडियेशन की चाहे कितनी भी मात्रा क्यों न हो, यदि उचित सावधानियां बरती जाएं तो उसे भी हम बिना किसी खतरे के व्यवहार में ला सकते हैं। यदि कर्मचारी रेडियेशन को उचित आदर प्रदान कर दें तो फिर उससे डरने की कोई आवश्यकता नहीं।

रेडियेशन का पता लगाने वाले कई प्रकार के यंत्रों का कर्मचारियों के बचाव के लिए निरन्तर उपयोग होता रहता है। ऐसे बिल्ले (बैज) पहने जाते हैं जिनमें फिल्में लगी रहती हैं। किसी कर्मचारी के बिल्ले की फिल्म को डेवेलप करके इस बात का पता लगाया जा सकता है कि उस व्यक्ति पर रेडियेशन का कितना प्रभाव पड़ा है। प्रत्येक कर्मचारी के बिल्ले की फिल्म का समय-समय पर निरीक्षण किया जाता है और प्रत्येक कर्मचारी का अलग-अलग रिकार्ड रखा जाता है। ये रिकार्ड बड़ा महत्त्व रखते हैं।

अगले चित्र में एक कर्मचारी रेडियेशन की पड़ताल करने के लिए एक हाथ-पांव-मापक यन्त्र से काम ले रहा है। दूसरा कर्मचारी एक साथी कर्मचारी के कपड़ों पर गेइगर-मापक यन्त्र घुमा रहा है। कई और भी यन्त्र इस काम के लिए प्रयोग में लाये जाते हैं। उनमें से कइयों के बड़े अटपटे उपनाम हैं, जैसे—'क्यूटी पाई' (Cutie Pie), 'पी-वी' (Pee Wee), आदि।

जिस प्रकार की और जितनी मात्रा की रेडियेशन में

सम्भवतः लोग खुले रहे हों, उसी प्रकार की पड़ताल की जाती है। रेडियो-सक्रिय पदार्थ निम्नलिखित प्रकार के रेडियेशनों में से एक या एक से अधिक प्रकार का रेडियेशन उत्पन्न कर सकते हैं। ये सभी प्रकार के रेडियेशन अदृश्य होते हैं।

इनमें से एक प्रकार का रेडियेशन ऐल्फ़ा (Alpha) कणों के रूप में होता है। रेडियेशन की प्रत्येक ऐल्फ़ा किरण का प्रत्येक कण दो प्रोटोनों और दो न्यूट्रोनों का मिश्रण होता है। ये न्यूट्रोन और प्रोटोन विदीर्ण होते हुए अणु में से निकलते हैं। ये किरणें साबुत चमड़ी के अन्दर नहीं घुस सकतीं। किन्तु यदि कोई रेडियो-आइसोटोप, जो शरीर के अन्दर प्रविष्ट हो चुका हो, उन किरणों को 'मुक्त' कर दे तो उन से भारी हानि हो सकती है। वायुमंडल में वे केवल एक इंच तक फैलती हैं और साधारण कागज का एक टुकड़ा भी उन्हें

रोकने में समर्थ हो जाता है ।

बीटा (Beta) कण इलैक्ट्रोन होते हैं जो विशिष्ट रेडियो-सक्रिय अणु में से निकलकर अत्यन्त तीव्र गति से फैलते हैं। ये अदृश्य कण वायुमंडल में केवल कुछ ही फुटों तक यात्रा करते हैं और एक इंच मोटी लकड़ी इन्हें रोक सकती है। ये मनुष्य के शरीर में एक तिहाई इंच तक घुस सकते हैं और यदि शरीर के अन्दर घुस जाएं तो भयानक जलन पैदा कर देते हैं।

गामा (Gamma) किरणें काफी अन्दर तक घुस सकती हैं और इन्हें कंकरीट या सीसे की काफी मोटी तह से ही रोका जा सकता है। ये किरणें 'ऐक्स-रे' किरणों से सम्बंधित होती हैं जो रेडियम और यूरेनियम में से निकलती हैं।

न्यूट्रोन किसी पुंज में कई फुट अन्दर तक घुस सकते हैं, इसलिए बहुत ख़तरनाक होते हैं। इन से बचाव करने के साधन वही हैं जो गामा किरणों से बचाव करने के होते हैं।

तीन प्रकार का रेडियेशन

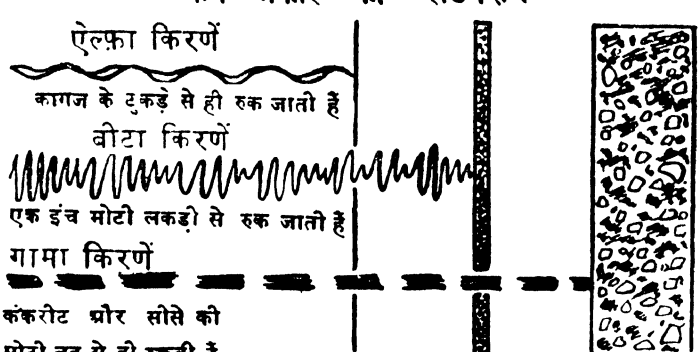

यद्यपि रेडियो-सक्रिय अणुओं में से निकलने वाले ये तेज़ दौड़ने वाले कण और किरणें मानव-शरीर को भारी क्षति पहुंचाती हैं, किन्तु स्वास्थ्य-वैज्ञानिकों द्वारा इतनी अधिक सावधानी बरती जाती है कि आणविक-ऊर्जा-सम्बन्धी काम करने वालों को साल-भर में आणविक-ऊर्जा का प्रभाव सुरक्षित मात्रा से भी बहुत कम सहना पड़ता है। अपनी पाचन-प्रणाली का ऐक्स-रे कराने में आप जितना रेडियेशन ग्रहण करते हैं शायद उससे कम रेडियेशन आणविक ऊर्जा के क्षेत्र में काम करने वाले ग्रहण करते हैं—यद्यपि सारा साल 'गर्म' पदार्थ उनके हाथों में से निकलते हैं।

मान लीजिये कि आपको कोई छोटा-सा परीक्षण करना है जिसमें आपको रेडियेशन की हल्की-सी मात्रा की आवश्यकता है। तो इसके लिये आप एक 'शुष्क' बक्स या 'दस्ताने वाला बक्स' काम में लाएंगे। यह एक बन्द बक्स होता है जिसका

दस्ताने वाला बक्स

सामने वाला भाग अथवा ढक्कन सीसे का होता है और एक ओर दस्ताने बने हुए होते हैं जिनके अन्दर आप अपने हाथ डाल सकते हैं। हवा की एक लहर जो शुष्क बक्स में से गुजरती है, छान ली जाती है ताकि उसमें से रेडियो-सक्रिय धूलि निकाल ली जाए। उसके बाद बक्स को, प्रयोग में लाने के लिये, बाहर भेजा जाता है। कुछ शुष्क बक्स ऐसे भी बनाए गए हैं जो घूमते रहते हैं ताकि कर्मचारी के हाथ उसके प्रत्येक भाग तक पहुंच सकें।

यदि आपको रेडियेशन की अत्यधिक मात्रा की आवश्यकता है तो आप एक 'गर्म गुफा' में काम करेंगे। यह गुफा एक विशाल-काय बक्स होता है जिसकी दीवारें और छत कंकरीट की मोटी तह की बनी हुई होती हैं। इन 'बक्सों' को 'गर्म कोठरी' भी कहते हैं, किन्तु साधारणतया इन्हें 'गुफाएं' ही कहते हैं। पहले तो ७ टन वज़न का कंकरीट का द्वार रेल की पटरी पर लुढ़का दिया जाता है और गुफा के अन्दर वाले भाग का यह देखने के लिये अच्छी तरह निरीक्षण कर लिया जाता है कि पिछले परीक्षण के बाद कोई रेडियो-सक्रियता शेष तो नहीं रह गई है। परीक्षण के लिए आवश्यक यंत्र आदि गुफा में रख दिये जाते हैं और कुछ यंत्र एक पारदर्शी प्लास्टिक केस में रख दिये जाते हैं। अब परीक्षण के लिए सब बातें ठीक-ठाक हैं, किन्तु यह निश्चय करने के लिये कि सब चीजें ठीक हैं, एक बार 'शुष्क लहर' का और प्रयोग किया जाता है।

अब सीसे का एक भारी बरतन अन्दर ढकेल दिया जाता

है और यूरेनियम २३५ का एक नमूने का टुकड़ा सीसे के एक डब्बे में डालकर डब्बे को जंजीर की रस्सी की सहायता से एक तख़्ते पर टिका दिया जाता है। फिर जंजीर को हटा लिया जाता है, द्वार बंद कर दिया जाता है और परीक्षण प्रारम्भ होता है। न कोई व्यक्ति यूरेनियम को छूता है, न उसके चारों ओर की हवा को सूंघता है। यूरेनियम पर आप आसानी के साथ एक मशीनी हाथ द्वारा काम कर सकते हैं। इस यंत्र के हाथ उसी तरह काम करते जाते हैं जिस तरह आपके अपने हाथ काम करते हैं। रंगीन शीशे की बनी हुई ३-फुट मोटी सुरक्षात्मक खिड़की में से आप अपने द्वारा की गई क्रियाओं को गुफा के अन्दर देख सकते हैं।

जब आप काम कर रहे होते हैं तो एक दूसरा यंत्र कमरे की हवा को बाहर खींचता रहता है और उसे एक फ़िल्टर पेपर में से निकालता रहता है। फिर उसका निरीक्षण किया जाता है ताकि रेडियो-सक्रियता का पता लगाया जा सके।

यदि आप अपने सहायक कर्मचारी को गुफा के अन्दर वाले किसी यंत्र के सम्बन्ध में कुछ बतलाना चाहते हैं तो यह काम आप बड़ी आसानी से कर सकते हैं। आप मशीनी हाथ की एक अंगुली से छः फुट परे रखे हुए किसी भी यंत्र की ओर संकेत कर सकते हैं, मानो वह यंत्र आपके सामने ही रखा हो। सहायक कर्मचारी इस संकेत को कानों के सहारे लटकते हुए ऑपेरा-चश्मे की सहायता से देख सकता है। यह चश्मा साधारण चश्मे जैसा ही होता है।

आप कमरे के बाहर बैठे हुए कमरे के अन्दर इतनी

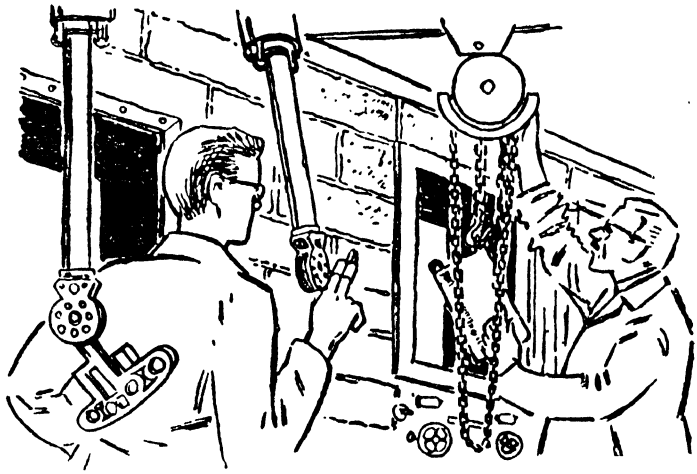

आसानी के साथ अपना परीक्षण समाप्त कर लेते हैं मानो परीक्षण के पदार्थों पर आप अपनी साधारण अंगुलियों के साथ काम करते रहे हों। मशीनी हाथ आपके हाथों की प्रत्येक क्रिया का बड़ी सरलता के साथ अनुसरण करता चला जाता है। परीक्षण समाप्त करके आप मशीनी हाथ की सहायता से यूरेनियम को उसके सीसे के डब्बे में बन्द कर देते हैं, आपका सहायक गुफा का द्वार खोल देता है, और सीसे के बर्तन को गुफा के अन्दर रख दिया जाता है। बस, रेडियो-सक्रिय पदार्थ को पूरी सुरक्षा-पूर्ण रीति से ऐसे स्थान पर रख दिया गया जहां से उसकी किरणें किसी प्राणी तक नहीं पहुंच सकतीं।

किसी अन्य 'गर्म गुफा' पर एक अन्य कर्मचारी एक छोटे मशीनी हाथ की सहायता से काम कर रहा है। इस मशीनी

हाथ में पहले वाले मशीनी हाथ से कम बारीकियां होती हैं। कुछ चाबियों और स्विचों को घुमाने अथवा दबाने से कर्मचारी गुफा के अन्दर लगी हुई एक फौलाद की कलाई और हाथ से कुछ क्रियाएं करा सकता है। यह मशीनी हाथ मानवीय हाथों अथवा बड़े मशीनी हाथों जितनी क्रियाएं नहीं कर सकता, किंतु फिर भी यह कुछ विशेष कार्य सरलतापूर्वक कर ही लेता है।

एक और भवन में एक अन्य कर्मचारी एक विशेष टेली-विज़न के पर्दे पर अपने काम को देखता रहता है। विशेष प्रकार का चश्मा लगाकर वह पर्दे पर न केवल लम्बाई और ऊंचाई (एवं चौड़ाई) की दिशा में देख सकता है बल्कि गहराई की दिशा में भी देख सकता है। मशीनी हाथ की सहायता से वह 'गर्म' पदार्थों से सुरक्षित दूरी पर बैठकर अत्यन्त बारीक और टेढ़े काम कर सकता है।

कुछ अन्य कर्मचारी पानी के एक गहरे गढ़े में पदार्थों का निरीक्षण कर रहे होते हैं। पानी के नीचे वाले इस कारखाने में विदीर्ण होते हुए अणुओं की किरणों को उन लोगों के पास पहुंचने से रोक दिया जाता है जो दूरस्थ नियन्त्रकों की सहायता से उन पदार्थों पर काम करते हैं।

कई आणविक योजनाओं पर काम करने के लिये आपको इतने विलक्षण और ऊट-पटांग ढंग के कपड़े पहनने पड़ते हैं कि उन्हें पहनकर आप ऐसे लगेंगे मानो आप मंगल ग्रह से या किसी अन्य ग्रह से आए हैं। एक प्रकार का सूट केवल प्लास्टिक का बनाया जाता है और उसके जोड़ों पर ऐसी ज़िप लगाई जाती है कि बन्द होने पर उसके जोड़ बिल्कुल मज़बूती से

एक-दूसरे के साथ जुड़ जाते हैं—उनमें से हवा भी नहीं निकल सकती। सूट के ऊपर वाले भाग में से एक नली निकलती है जो आपकी कमर पर बंधे हुए एक टैंक से जोड़ दी जाती है। उस टैंक में से आपको सांस लेने के लिए शुद्ध हवा मिलती रहती है। इस तरह से इस बात का कोई खतरा नहीं रहता कि रेडियो-सक्रिय हवा आपके सूट के अन्दर घुस सके। वास्तव में सूट में कोई छिद्र रहता ही नहीं।

मरम्मत करने वाले कर्मचारियों को कई बार और भी अधिक विलक्षण सूट पहनने पड़ते हैं, क्योंकि इन कर्मचारियों को ऐसे क्षेत्रों में एवं जगहों पर काम करना होता है जहां बड़े और भारी-भारी सूट बाधा उपस्थित करते हैं। पतले प्लास्टिक के बने हुए एक सूट का पिछला भाग सुरंग की तरह लम्बा और सकरा होता है। इस पिछले भाग का अन्तिम सिरा एक कमरे की दीवार में बने हुए एक छेद से जोड़ दिया

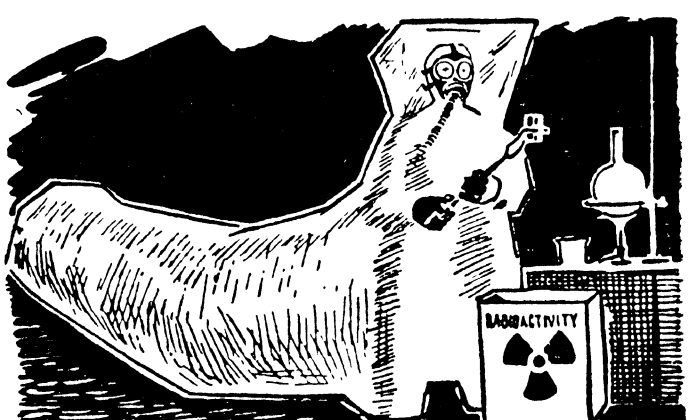

जाता है। उस छेद में से कर्मचारी घुसकर और सुरंग-जैसे भाग में से रेंग कर उस सूट के अन्दर घुस जाता है। सूट से जुड़ी हुई नलियों में से कर्मचारी को हवा उपलब्ध की जाती है। इस सूट में घुसकर तथा ऐस्बैस्टॉस नामक पदार्थ के बने हुए दस्ताने पहनकर कर्मचारी आणविक मशीनरी की मरम्मत कर सकता है। वे 'गर्म कमरों' में पूरी सुरक्षा के साथ इधर-उधर घूम-फिर सकते हैं। बस, उनका सूट नहीं फटना चाहिए।

यदि कहीं खतरा हो तो तुरन्त खतरे की घण्टी बज जाती है। मान लीजिये कोई कर्मचारी ऐसे स्थान पर काम कर रहा है जहां रेडियो-सक्रिय पदार्थों पर काम हो रहा है, और उसके कपड़ों पर कुछ रेडियो-सक्रिय पदार्थ लग गया है। जब वह एक विशेष द्वार में से निकलता है जिसके चारों ओर गेइगर-मापक यंत्र की नलियां लगी हुई होती हैं तो तुरन्त खतरे की घण्टी बज उठती है और उस कर्मचारी को तथा अन्य कर्मचारियों को चेतावनी मिल जाती है कि उस कर्मचारी पर से रेडियो-सक्रियता का प्रभाव दूर किया जाए। कर्मचारी तुरन्त एक विशेष रीति से स्नान करता है और उसके कपड़े अन्य रेडियो-सक्रिय कचरे के साथ दफ़ना दिये जाते हैं। इसके कुछ दिनों बाद तक उसे रेडियो-सक्रिय क्षेत्र में काम नहीं करने दिया जाता, और डाक्टर नियमित रूप से समय-समय पर उसका अच्छी तरह निरीक्षण करते रहते हैं ताकि इस बात का पूरी तरह निश्चय हो जाए कि उसके शरीर के अन्दर रेडियो-सक्रिय पदार्थ बिल्कुल नहीं रह गए हैं।

आणविक-ऊर्जा-योजना में काम करने वाले प्रत्येक कर्म-

चारी का अत्यन्त सावधानी के साथ बचाव किया जाता है। प्रत्येक क्रिया पूरी-पूरी सावधानी के साथ की जाती है। झाड़ुओं तथा सफाई करने वाली अन्य वस्तुओं की भी जांच की जाती है कि कहीं उनमें रेडियो-सक्रिय धूल के कण न लग गए हों। साथ ही 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' कर्मचारियों को इतनी मात्रा की रेडियो-सक्रियता को अपने खुले शरीर पर ग्रहण करने की अनुमति दे देता है जिसको यदि वे सारी आयु भर ग्रहण करते रहें तो भी उन्हें कोई हानि न पहुंचे।

सफाई करने वाली वस्तुओं की भी रेडियो-सक्रिय धूल के लिये जांच की जाती है।

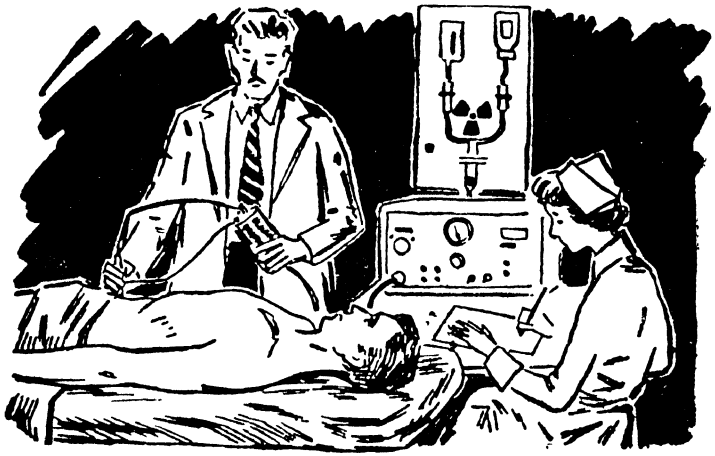

: ७ :

डाक्टर और अणु

सन् १९३० से पहले संसार को केवल रेडियम ही एक ऐसा तत्त्व ज्ञात था जो इतनी तीव्र गति से टूटता था कि उसे कैन्सर तथा अन्य रोगों की चिकित्सा में काम में लाया जा सकता था। बाद में जब अणु-विदारक यंत्रों में कृत्रिम रेडियो-आइसोटोपों का निर्माण किया जाने लगा तो इन मूल्यवान् पदार्थों के छोटे-छोटे टुकड़े चिकित्सा-क्षेत्र में अनुसंधान करने वालों तथा अस्पतालों के लिये सुलभ हो गए। यद्यपि ये आइसोटोप अत्यन्त मूल्यवान् और दुर्लभ थे, फिर भी इनसे

मनुष्य के पास जो किरण देने वाले थोड़े से अणु थे उनमें कुछ-न-कुछ वृद्धि अवश्य हुई।

किन्तु अब तो परिमाण में पहले से हजारों गुणा अधिक रेडियो-आइसोटोपों का निर्माण आणविक भट्टियों में किया जाने लगा है। आणविक राख के रूप में जिन रेडियो-आइसोटोपों का निर्माण होता है उनके अतिरिक्त एक तत्त्व की थोड़ी-सी मात्रा एक डब्बे में डालकर और उस डब्बे को आणविक भट्टी में रखकर अत्यन्त लाभदायक आइसोटोप 'आज्ञा एवं इच्छानुसार' बनाए जा सकते हैं। भट्टी में उस तत्त्व के अणु-लक्ष्यों पर उन करोड़ों न्यूट्रोनों द्वारा प्रहार किया जाता है जो यूरेनियम के अणुओं को विदीर्ण करके मुक्त कर लिये जाते हैं। उन करोड़ों न्यूट्रोनों में से कुछ-न-कुछ न्यूट्रोन लक्ष्य वाले तत्त्व के अणुओं के नाभिकों में घुसने में अवश्य सफल हो जाते हैं। इस प्रक्रम से उस तत्त्व के अधिकाधिक भारी आइसोटोपों का निर्माण हो जाता है।

मान लीजिये वैज्ञानिक ऐसा 'कोबॉल्ट' (एक मूल तत्त्व वाली धातु) बनाना चाहते हैं जिसके नाभिक में ६० कण हों। प्राकृतिक कोबॉल्ट को, जिसके नाभिक में ५९ कण होते हैं, एक आणविक भट्टी में रख दिया जाता है। वहां करोड़ों-अरबों, बल्कि असंख्य, न्यूट्रोन उसके चारों ओर, सब दिशाओं में, दौड़ते हैं। कोबॉल्ट-अणुओं के नाभिकों के और उनके इलैक्ट्रोनों के घेरों के बीच में जो (अपेक्षाकृत) विशाल रिक्त स्थान होता है उसके पास से बहुत से न्यूट्रोन निकलते हैं। कभी-कभी कोई न्यूट्रोन अपने लक्ष्य (नाभिक)

न्योट्रोनों से प्रहार करके कोबॉल्ट को रेडियो-सक्रिय बना दिया जाता है

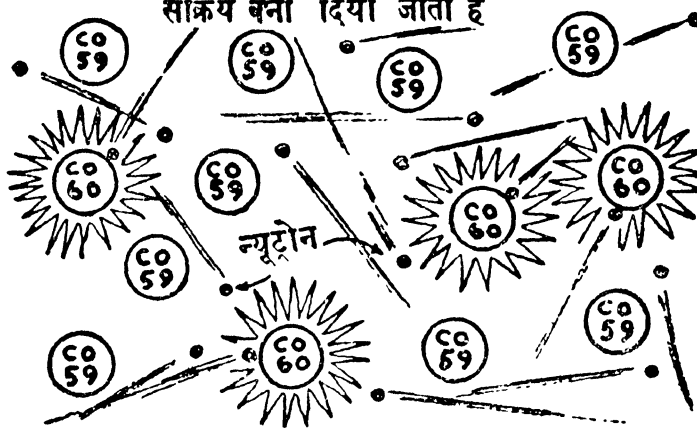

से टकरा जाता है और कोबॉल्ट-५९ का अणु कोबॉल्ट-६० में बदल जाता है। ऐसे अणु अब रेडियो-सक्रिय हो जाते हैं, क्योंकि इनके अन्दर अब बहुत-से कण बाहर से घुस गए हैं जिनके कारण इन्हें 'आणविक अजीर्ण' हो गया है।

अब इस नए कोबॉल्ट का, जिसे आणविक भट्टी में 'पकाया' गया है, कैन्सर की चिकित्सा में उपयोग किया जाता है। इस चिकित्सा में लचकदार निलन की पतली-पतली नल्कियों को कोबॉल्ट-६० से भर दिया जाता है। फिर उन नल्कियों को कैन्सर में सी दिया जाता है। कोबॉल्ट के रेडियो-सक्रिय अणुओं की किरणें नल्कियों में से निकलकर रुग्ण तन्तुओं को नष्ट कर देती हैं। चिकित्सा-कार्यों में प्रयुक्त होने वाले कई प्रकार के पतले तारों, नल्कियों और सुइयों को ओक-रिज नामक स्थान की आणविक भट्टी में सन् १९४६ में कोबॉल्ट

५९ से कोबॉल्ट-६० में परिणत कर दिया गया था। पशुओं पर इन चीजों से परीक्षण करने के बाद इन्हें मानवीय शरीर पर प्रयुक्त किया गया। इस कोबॉल्ट से वही काम लिया गया जो पहले अधिक मूल्यवान पदार्थ रेडियम से लिया जाता था।

बाद में निलन के धागों पर (जिन्हें घाव को सीने के लिये काम में लिया जाता था) रेडियो-सक्रिय कोबॉल्ट के तारों से मढ़ा गया। कैन्सर की रसौली को आपरेशन द्वारा निकालकर सर्जन इस कोबॉल्ट का तार लिपटे हुए निलन के धागे से आपरेशन के घाव को सी देता है ताकि यदि आपरेशन के बाद भी किसी सैल में कैन्सर का माद्दा रह गया हो तो कोबॉल्ट का रेडियो-सक्रिय तार उसे अपने-आप ठीक करता रहे। शरीर के बहुत गहरे भागों में यदि कोई रसौली हो तो उसमें एक विशेष प्रकार की 'बन्दूक' द्वारा सोने की 'गोलियां' आरोपित की जा सकती हैं। सोने की इन 'गोलियों' को ओक-रिज की आणविक भट्टी में रेडियो-सक्रिय बनाया जाता है।

अमरीका के टैनैस्सी राज्य के उपरोक्त ओक-रिज नामक नगर में संसार का सबसे विलक्षण 'औषध-भण्डार' है। हर महीने यहां से बहुत-से रेडियो-सक्रिय रसायन जहाजों द्वारा विभिन्न हस्पतालों और प्रयोग-शालाओं को भेजे जाते हैं।

ओक-रिज नगर के इस औषध-भण्डार से आज ५०० से अधिक मैडिकल-संस्थाओं को रेडियो-आइसोटोप सप्लाई किये जाते हैं। यदि कोई संस्था रेडियो-आइसोटोपों को कैन्सर के अनुसंधान अथवा चिकित्सा के लिये मंगवाती है तो उसे लागत से बहुत कम मूल्य पर रेडियो-आइसोटोप दे दिये जाते हैं।

यदि आप इस औषध-भण्डार में जाएं तो न तो आपको वहां औषधियों की साधारण दुकानों की तरह लैमन-सोडा पिलाने वाली मशीन रखी मिलेगी, न दुकान को सजाने के लिये खिलौने रखे होंगे, और न ही आपको वहां इसी प्रकार की कोई अन्य वस्तु मिलेगी। सबसे आश्चर्य की बात यह है कि औषध-भण्डार में बिकने वाली 'औषधियां' भी आपको वहां नहीं दिखाई देंगी। उन्हें देखने के लिये आपको एक आईने में देखना पड़ेगा, क्योंकि ये औषधियां बहुत 'गर्म' हैं—इतनी 'गर्म' कि आप केवल दूरस्थ नियंत्रक से ही इनका निरीक्षण कर सकते हैं।

ओक-रिज के इस विचित्र औषध-भंडार में बिकने वाली अनेक औषधियों में से कुछ ये हैं—तार, सूइयां, रेडियो-सक्रिय कोबॉल्ट के मनके, सोना तथा अन्य मूल-तत्त्व।

मान लीजिये किसी हस्पताल से भंडार के पास किसी विशेष रेडियो-सक्रिय द्रव के लिये मांग आती है। भंडार का कर्मचारी उस बोतल को ढूढ़ने के लिये एक झुके हुए आईने में देखता है। उस आईने में देखकर उसे कंकरीट की दो फुट मोटी दीवार के पीछे रखी हुई वस्तुएं दृष्टिगोचर हो जाती हैं। धातु की एक यांत्रिक बांह को, जिसमें धातु की अंगुलियां लगी हुई होती हैं, प्रयोग में लाकर कर्मचारी एक छोटी-सी दराज़ को बाहर खींचता है। इस दराज़ में बोतलें भरी हुई होती हैं। वह यांत्रिक हाथ की सहायता से जिस बोतल की आवश्यकता हो उसे दराज़ में से उठा लेता है। फिर वह उसी यांत्रिक हाथ की सहायता से बोतल को खोलता है, पिचकारी

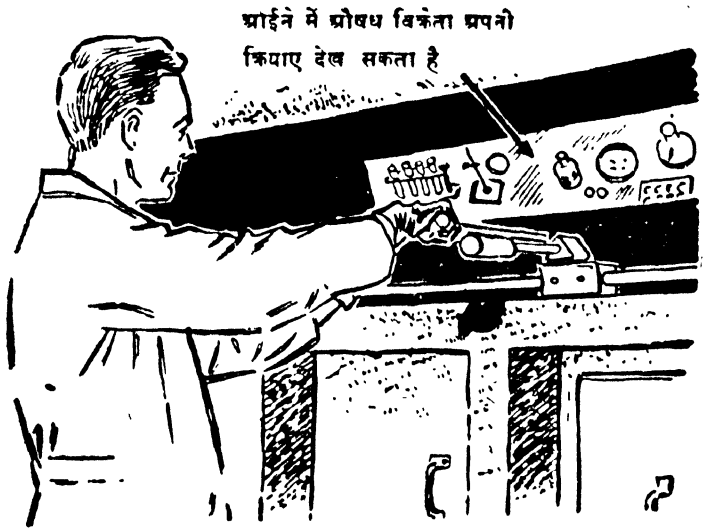

से उसमें से थोड़ा-सा द्रव निकालकर एक छोटी शीशी में डालता है और फिर दोनों बोतलों में डाट लगा देता है। खुले हुए दराज़ में से रेडियेशन निकलता रहता है, इसलिये गेइगर-मापक यंत्रों की घंटियां बजती रहती हैं और वे उस समय तक बजती रहती हैं जब तक कि कर्मचारी अपना काम पूरा नहीं कर लेता।

आपको दी जाने वाली शीशी को सीसे के एक बक्स में सावधानी से रख दिया जाता है। सीसे के बक्स में से रेडियेशन की घातक किरणें बाहर नहीं निकल सकतीं। अब यह बक्स आसानी से हवाई जहाज़, ट्रेन या ट्रक द्वारा हस्पताल को भेज दिया जाता है।

वास्तविक 'माल' का, अर्थात् रेडियो-आइसोटोपों का, जो

इस तरह हस्पतालों आदि को सप्लाई किए जाते हैं, वज़न शायद नहीं के बराबर होता हो, किन्तु जिन बक्सों और पेटियों आदि में यह ज़रा-सा माल भेजा जाता है उनका कुल वज़न डेढ़-डेढ़ सौ पौंड हो जाता है। अत्यन्त 'गर्म' पदार्थों की पेटियों आदि का वज़न तो कई-कई टन तक जा पहुंचता है।

अनेक डाक्टरों की सम्मति में इन रेडियो-आइसोटोपों का निर्माण चिकित्सा-विज्ञान की प्रगति के महान् चरणों में से एक है। अणुओं में रेडियो-सक्रियता उत्पन्न करके शरीर में उनकी यात्रा का पूरा विवरण प्राप्त किया जा सकता है। इस साधन से हम जीवन-सैलों में होने वाली क्रियाओं एवं घटनाओं के सम्बन्ध में ठीक-ठीक ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। इन अणुओं को आप ऐसी भेड़ें समझ लें जिनके गले में घंटियां बंधी हुई हों। किसी एक भेड़ के गले की घंटी की आवाज़ सुनकर चरवाहा अपने गल्ले का पता लगा लेता है। इसी प्रकार किसी अणु-समूह में से यदि एक भी अणु रेडियो-सक्रिय हो तो गेइगर-मापक यंत्र में तुरन्त आवाज़ पैदा हो जाती है और वैज्ञानिक को अणु-समूह की किसी विशेष स्थान पर मौजूदगी का पता लग जाता है।

यदि किसी जीवन-सैल में कोई धातु हो तो उसे रेडियो-सक्रिय बनाया जा सकता है और फिर उसके मार्ग का पता लगाया जा सकता है। उदाहरण के तौर पर, मान लीजिये, अमरीका की पैन्सिल्वेनिया राज्य के फ़िलैडलिफ़िया स्थान में कैन्सर-सम्बन्धी अनुसंधान के लिये जो इन्स्टीट्यूट खुली हुई है, वह 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' द्वारा स्थापित किए हुए किसी

आणविक औषध-भण्डार से रेडियो-सक्रिय कार्बन मंगवाती है। यह कार्बन जीवित सैल में प्रयुक्त किया जाता है। यदि जीवन की क्रिया में साधारण प्रकार का कार्बन प्रयुक्त किया जाए तो उसके मार्ग का निरीक्षण नहीं हो सकता, क्योंकि ऐसे कार्बन का प्रत्येक अणु दूसरे अणु जैसा होता है। कार्बन १४ जो रेडियो-सक्रिय होता है, ऐसा कार्बन होता है जिस पर मानो लेबल लगा हुआ है। चीनी में कार्बन होता है। यदि उसे रेडियो-सक्रिय बना दिया जाए तो उस चीनी पर समझ लीजिये कि लेबल लग गया। किन्तु आपका शरीर इस अन्तर को नहीं जान सकता। रेडियो-सक्रिय कार्बन-मिली हुई चीनी का स्वाद और रूप बिल्कुल वैसा ही होता है जैसा किसी अन्य, अर्थात् साधारण, चीनी का। आप उसका प्रयोग अपने भोजन में कर सकते हैं और आपको दोनों प्रकार की चीनी में लेश-मात्र भी अन्तर मालूम नहीं होगा। किन्तु गेइगर-काउण्टर-यंत्र की सहायता से हम रेडियो-सक्रिय चीनी के मार्ग का पता लगा सकते हैं, क्योंकि इस चीनी की चुटकी-भर मात्रा में लाखों अणु प्रति-क्षण टूटते जाएंगे। गेइगर-काउण्टर-यंत्र एक सैकिंड में चार आणविक विस्फोटों तक का पता लगा सकता है, इसलिये रेडियो-सक्रिय चीनी शरीर में जिस मार्ग से जाएगी उसका हम इस यंत्र की सहायता से आसानी से पता लगा सकते हैं।

किसी चूहे को रेडियो-सक्रिय चीनी खिला कर हम उसका उपयोग इस प्रयोग में कर सकते हैं। यदि रसायन-शास्त्री को ऐसे चूहे की चर्बी में 'लेबल लगा हुआ' कार्बन-अणु

मिलता है तो उसे ज्ञात हो जाता है कि कार्बन चीनी में परिणत हो गया है। जिस गति से यह परिवर्तन हुआ है, रसायन-शास्त्री उसका पता लगा सकता है। साथ ही शरीर में चीनी के आगे-आगे बढ़ने पर जो-जो रसायन बनते गए हैं उनका भी पता लग जाता है।

रेडियो-सक्रिय कार्बन-अणुओं में से, जो चूहे के शरीर में प्रविष्ट हो गए हैं, हजारों वर्षों तक रेडियेशन निकलता रहेगा। कार्बन १४ का 'अर्ध-जीवन' ५७०० वर्ष का होता है, इसलिए इस अवधि में अणुओं की आधी संख्या विदीर्ण होगी। रेडियो-सक्रिय अणु जब तक चूहे के शरीर में रहेंगे तब तक रसायन-शास्त्री गेइगर-काउण्टर-यंत्र की सहायता से उनका पता लगा सकता है। हमारे वाला चूहा 'पीटर पैन' कहानी के उस मगरमच्छ की तरह है जो क्लाक निगल गया था और जो उसी क्लाक के टिक-टिक शब्द के कारण पकड़ा गया था। 'लेबल' लगे हुए अणु गेइगर-काउण्टर पर खट-खट का शब्द करके

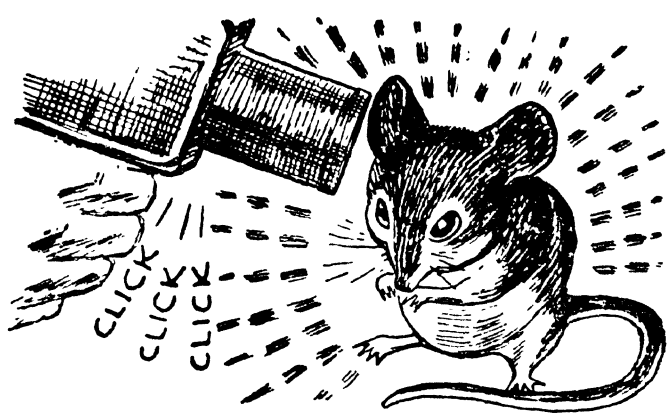

सदा अपने आपको प्रकट करते रहेंगे ।

आणविक भट्टियों में से निकले हुए इन संकेतक-अणुओं पर सारे अमरीका की अनुसंधान-प्रयोगशालाओं और हस्पतालों में नित्य-प्रति प्रयोग हो रहे हैं।

इन दिलचस्प प्रयोगों में से एक प्रयोग के परिणाम के तौर पर यह आश्चर्यजनक बात ज्ञात हुई है कि आप आज से एक वर्ष के बाद वही अणु-समूह नहीं रहेंगे जो आज हैं। आपके शरीर के ९८ प्रतिशत अणुओं का स्थान नए अणु ले लेंगे जिन्हें आप भोजन, वायु और पानी आदि के द्वारा अपने अंदर ले जाते रहते हैं। प्राणियों के शरीर में आणविक परिवर्तन के इस ज्ञान से डाक्टरों की कैन्सर तथा अन्य रोगों के सम्बन्ध में जानकारी बढ़ जाएगी। अणुओं का 'खोजी' के रूप में प्रयोग बहुत-से डाक्टरों की दृष्टि में चिकित्सा-विज्ञान के लिए उतना ही महत्त्व रखता है जितना कीटाणुओं का ज्ञान तथा सूक्ष्म-दर्शी यन्त्र का आविष्कार। इस नए साधन की सहायता से कितने ही ऐसे रहस्यों का उद्घाटन होगा जो दूसरे उपायों से कभी भी प्रकाश में नहीं आ सकते थे।

चिकित्सा-विज्ञान में 'लेबल' लगे अणु के उपयोग का एक उदाहरण और देखिए। मान लीजिए किसी डाक्टर की आपरेशन की मेज़ पर एक ऐसा रोगी लेटा हुआ है, जिसके मस्तिष्क में रसौली (Tumour) है। डाक्टर यह पता लगाना चाहता है कि वह रसौली ठीक किस स्थान पर है। ऐक्स-रे परीक्षा ने रसौली प्रकट नहीं की, किन्तु रोगी के लक्षणों से डाक्टर को विश्वास है कि उसके मस्तिष्क में अवश्य रसौली

है। ऐसी स्थिति में डाक्टर ने पहले दिन रोगी को फ़ास्फ़ोरस के 'लेबल' लगे हुए अणुओं का इन्जैक्शन लगा दिया था। मस्तिष्क की रसौली आस-पास के अन्य तन्तुओं की अपेक्षा फ़ास्फ़ोरस की अधिक मात्रा का अवशोषण करती है। और वह रडियो-सक्रिय फ़ास्फ़ोरस में तथा साधारण फ़ास्फोरस में कोई भेद नहीं करती। यदि मस्तिष्क में कोई रसौली होगी तो आस-पास के तन्तुओं की अपेक्षा उसमें विदीर्ण होने वाले फ़ास्फ़ोरस-अणु अधिक संख्या में विद्यमान होंगे। अब डाक्टर सुई की आकृति वाले गेइगर-मापक यन्त्र से गिल्टी को ढूंढ़ता है। मापक मशीन में, जिसके साथ यह सुई लगी हुई होती है, रोशनी बहुत हल्की और समान गति से चमकती रहती है। डाक्टर धीरे-धीरे और हल्के हाथ से सुई को मस्तिष्क के भूरे

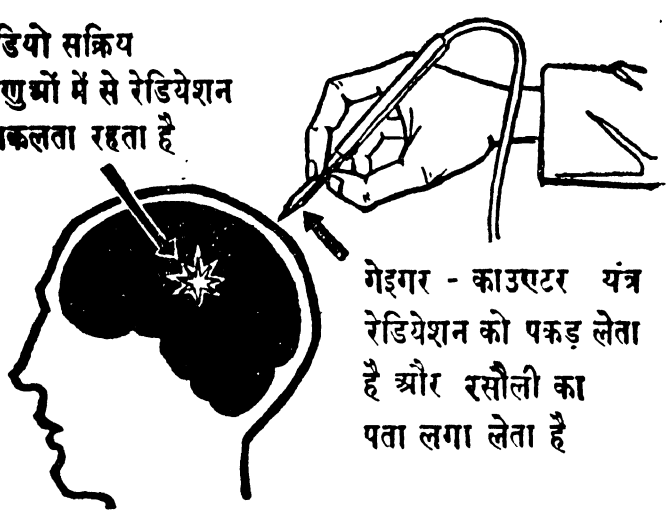

रंग के तन्तुओं पर से घुमाता जाता है। सहसा, किसी स्थान पर, रोशनी बड़ी तीव्र गति से लस-लस करने लगती है। यन्त्र में पता लगता कि उस स्थान पर एक सैकिंड में एक हज़ार से भी अधिक आणविक विस्फोट हो रहे हैं। उसी क्षण पता लग जाता है कि रसौली बड़ी गहराई में इसी स्थान पर है। इस रसौली की इस स्थान पर मौजूदगी का पता किसी अन्य साधन से नहीं लग सकता था। अब डाक्टर बड़ी आसानी से आपरेशन करके रसौली को निकाल सकता है।

एक दूसरा उदाहरण लीजिए। किसी दूसरे हस्पताल में एक लड़की आपरेशन की मेज़ पर लेटी हुई है। एक दुर्घटना में उसकी बांह पिस गई है। क्या डाक्टर को उस की बांह काटनी पड़ेगी? इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निभर करता है कि बांह में रक्त प्रचुर मात्रा में दौरा कर रहा है या नहीं। इस बात का निश्चय करने के लिए डाक्टर लोग रेडियो-सक्रिय सोडियम का प्रयोग करते हैं। खाने के नमक में 'सोडियम' होता है। सोडियम के अणुओं को रेडियो-सक्रिय करके नमक में मिला दिया जाता है। रेडियो-सक्रिय चीनी की भांति रेडियो-सक्रिय नमक की शक्ल-सूरत या स्वाद में कोई अन्तर नहीं होता। किन्तु रेडियो-सक्रिय नमक को इन्जैक्शन द्वारा यदि किसी धमनी में डाल दिया जाए तो गेइगर-काउण्टर यंत्र द्वारा उसकी गति-विधि का पता लगाया जा सकता है क्योंकि उसके कुछ अणु प्रतिक्षण टूटते रहेंगे। रेडियो-सक्रिय सोडियम के अणु कुछ ही क्षणों में डाक्टर को यह बतला देते हैं कि बांह में रक्त पर्याप्त मात्रा में दौरा कर रहा है। बस, डाक्टर

निश्चय कर लेता है कि बांह को काटना आवश्यक नहीं है।

ऊपर हमने उन केसों में से कुछेक के ही उदाहरण दिये हैं जिन में रेडियो-सक्रिय अणु चिकित्सा के क्षेत्र में 'जासूस' का काम करते हैं। इनके अतिरिक्त कई रोगों को नष्ट करने, रोगियों को अधिक आराम पहुंचाने, तथा जीवन को लम्बा करने में अणुओं के रेडियेशन का उपयोग किया जाता है।

उदाहरण के तौर पर कई हस्पतालों में रेडियो-सक्रिय फ़ास्फ़ोरस को 'पौलिसाइथीमिया वीरा' नाम के रक्त-सम्बन्धी रोग की चिकित्सा के लिए साधारण तौर पर प्रयुक्त किया जाता है। इस रोग में रक्त के लाल सैल बड़ी तीव्र गति से बढ़ने लगते हैं। कुछ दिन पहले तक सारे शरीर पर ऐक्स-रे का उपयोग करके इस रोग की चिकित्सा की जाती थी। किंतु अब इसकी चिकित्सा के लिए रेडियो-सक्रिय फ़ास्फ़ोरस काम में लाया जाता है। इस 'औषधि' का इन्जैक्शन देने से पहले तथा उसके बाद रोगी के रक्त की परीक्षा करके औषधि के परिणाम का आसानी से पता लगाया जा सकता है। यह नई चिकित्सा रोगी के लिए भी और हस्पताल में काम करने वालों के लिये भी अधिक सहूलियत की चीज़ है।

इसी प्रकार कुछ अन्य रेडियो-सक्रिय अणुओं का उपयोग कुछ अन्य रोगों की चिकित्सा में किया जा रहा है। हृदय में एक कष्टदायक रोग, 'एजिना पैक्टोरिस' के रोगियों के कष्ट को दूर करने के लिए रेडियो-सक्रिय आयोडीन का उपयोग किया जा रहा है। कई प्रकार के थाइरॉइड-कैन्सर की चिकित्सा के लिए भी आयोडीन को काम में लाया जाता है। रेडियो-सक्रिय

स्वर्ण का उपयोग कुछ विशिष्ट केसों में कैन्सर के तन्तुओं को नष्ट करने में किया जाता है। कुछ लोगों के शरीर के रिक्त भागों में विषैला पानी भर जाता है। इस रोग के रोगियों की सहायता के लिए भी रेडियो-सक्रिय स्वर्ण का उपयोग किया जाता है। इसी प्रकार रेडियो-सक्रिय स्ट्रॉन्टियम को ऐसी रसौलियों की चिकित्सा में, जिनमें कैन्सर नहीं होता, तथा आंख के कई प्रकार के कैन्सरों की चिकित्सा में बड़ी सफलता के साथ काम में लाया गया है।

केवल मनुष्य ही नहीं वरन् उसके पालतू पशु तथा अन्य प्राणी भी रेडियो आइसोटोपों से लाभ उठाते हैं। नीचे के चित्र में एक सलोत्री घोड़े की आंख की रसौली को ठीक करने के लिए रेडियो-सक्रिय स्ट्रॉन्टियम का प्रयोग कर रहा है।

हार्वर्ड मैडिकल स्कूल तथा मैसाच्यूसैट्स के हस्पताल में खोपड़ी को बिना चीरे-फाड़े मस्तिष्क में रसौली का पता लगाने के लिए 'पौज़ीट्रोन स्कैनर' को काम में लाया जाता है। इन्जैक्शन द्वारा रोगी की रग में रेडियो-सक्रिय संखिया की

थोड़ी-सी मात्रा डाल दी जाती है। कुछ घण्टों के बाद मापक-यन्त्रों द्वारा यह पता लग जाता है कि यह संकेतक संखिया कहां है और मस्तिष्क का एक नक्शा बनाकर उसमें यह दिखा दिया जाता है कि संखिया किस स्थान पर अधिकतम मात्रा में एकत्रित हो गया है। चूंकि कैन्सर वाली रसौली साधारण तन्तुओं की अपेक्षा रेडियो-सक्रिय संखिया को अधिक मात्रा में ग्रहण करती है इसलिए उसके आकार और स्थान का बहुत-से केसों में ठीक-ठीक पता लगाया जा सकता है।

छाती की कैन्सर वाली रसौली का पता रेडियो-सक्रिय पोटैशियम के प्रयोग से चल जाता है, जो छाती की रसौली में स्वस्थ तन्तुओं की अपेक्षा कहीं अधिक मात्रा में केन्द्रित होने की विशेषता रखता है।

ओक-रिज स्थान पर अणु के अध्ययन के लिए जो महान् संस्थान बना हुआ है (जिसे 'इन्स्टीट्यूट आफ़ न्यूक्लियर स्टडीज़' कहते हैं) उसके मैडिकल विभाग के अध्यक्ष डाक्टर मार्शल ब्रूसर की देख-रेख में ओक-रिज के हस्पताल में कैन्सर के सम्बंध में अनुसन्धान होता रहता है। आणविक औषध-भंडार के कुछ रेडियो-सक्रिय अणु इस अनुसन्धान में काम में लाए जाते हैं। कैन्सर का अनुसन्धान करने वाला यह विभाग संसार के सर्व-प्रथम आणविक हस्पतालों में से एक है।

एक दूसरा आणविक हस्पताल शिकागो विश्व-विद्यालय के क्षेत्र में स्थित एक आठ-मंजिला भवन है जहां ३० मील दूरस्थ आणविक भट्टियों से उनकी राख में से निकाले हुए रेडियो-आइसोटोप एक घण्टे से भी कम समय में मंगवाए जा

सकते हैं। यह हस्पताल, जिसका नाम आरगोन कैन्सर रिसर्च हस्पताल है, १४ मार्च १९५३ को डाक्टर लियोन ओ० जैकबसन के संचालन में आरम्भ किया गया। इस हस्पताल के निर्माण में ४२ लाख डालर व्यय हुए। यह सारा धन 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' ने दिया। हस्पताल चलाने के लिए जितने रुपये की आवश्यकता होती है, वह भी 'कमीशन' द्वारा शिकागो विश्व-विद्यालय की देख-रेख में खर्च किया जाता है। इस विशाल भवन में, इस छोर से उस छोर तक, तथा नीचे से ऊपर तक, कैन्सर के विरुद्ध मानो युद्ध का संचालन हो रहा है।

ज्यों ही आप हस्पताल में घुसते हैं, आप तुरन्त यह अनुभव कर लेते हैं कि यह हस्पताल अन्य हस्पतालों से भिन्न है। डाक्टरों, नर्सों तथा हस्पताल के अन्दर जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति की रेडियो-सक्रियता की अत्यधिक मात्रा से रक्षा करने के लिये जो सावधानियां बरती जाती हैं वही इस हस्पताल को अन्य हस्पतालों से भिन्न बनाती हैं। नर्सें तथा डाक्टर, जो नित्यप्रति रेडियेशन के सम्पर्क में आते रहते हैं, एक बिल्ला लगाए रखते है। उस बिल्ले के अन्दर रोज़ एक फ़िल्म लगा दी जाती है। फ़िल्म को अगले दिन डेवलप करके यह पता लगा लिया जाता है कि उस व्यक्ति ने उस दिन रेडियेशन की कितनी मात्रा ग्रहण की। रोज़ की मात्रा का रिकार्ड रखा जाता है ताकि यह पता लगता रहे कि रेडियेशन की मात्रा सुरक्षा-सीमा को लांघ तो नहीं गई है। ये बिल्ले उसी प्रकार के होते हैं जैसे सब आणविक उद्योगों में कर्मचारी लोग लगाते हैं। फाउन्टेन पैनों की आकृति के 'डोसी-मीटर' उनकी जेबों

में लगे रहते हैं। इनसे आप दिन भर, जब चाहें, यह पता लगा सकते हैं कि अमुक व्यक्ति पर कितना रेडियेशन पड़ चुका है।

जब डाक्टर, नर्स तथा आगन्तुक लोग इस आणविक हस्पताल से बाहर जाते हैं तो यह निश्चय करने के लिये उनका निरीक्षण किया जाता है कि उन्होंने रेडियेशन की खतरनाक मात्रा तो ग्रहण नहीं करली है।

आपको किसी आणविक हस्पताल में जाते समय डरने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि रेडियेशन की खतरनाक मात्रा से आप का पूरा-पूरा बचाव किया जाएगा। यदि आप हस्पताल को उसकी सबसे नीचे वाली मंज़िल से देखना शुरू करें तो आप बचाव के कई उपाय देखेंगे जो हस्पताल को पूर्णतया संकट-रहित कर देते हैं। दो मंज़िलें भूमि के नीचे हैं जहां पृथ्वी की मिट्टी रेडियेशन को रोकने में सहायता देती है।

सबसे नीचे की मंजिल का फ़र्श सड़क के स्तर से १९ फुट नीचे है। इस मंजिल में उन यन्त्रों के अतिरिक्त जो सारे भवन को गरम रखते हैं, पानी गरम करते हैं, हवा का दबाव नियंत्रित करते हैं तथा अन्य कई आवश्यकताएं पूरी करते हैं, विशेष प्रकार के टैंक भी रखे होते हैं जिनमें रेडियो-सक्रिय द्रव नालियों द्वारा आकर इकट्ठे होते रहते हैं। कुछ 'गर्म' पदार्थ तो थोड़े ही समय में अपनी रेडियो-सक्रियता खो देते हैं। उन्हें उसके बाद नगर की गन्दे पानी को साधारण नालियों में निकाल दिया जाता है। किन्तु कुछ ऐसे पदार्थ भी होते हैं जिन्हें

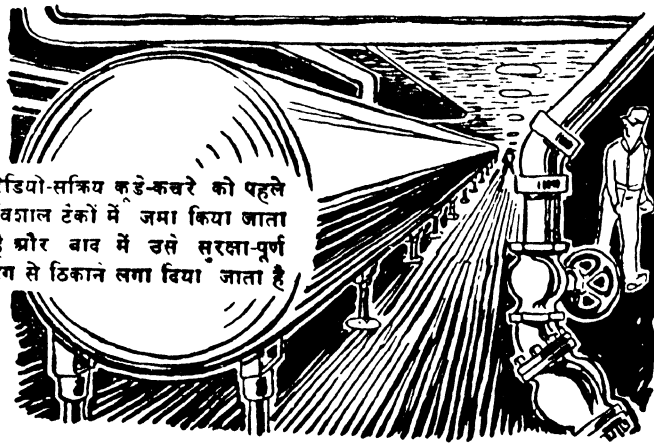

ट्रकों में भरकर आरगोन नैशनल लैबारेट्री में भेजना पड़ता है। वहां से उन्हें 'आणविक क़ब्रिस्तान' में भेजकर धरती में, काफ़ी गहराई में, गाड़ दिया जाता है।

उस मंजिल में दो कमरों को रेडियेशन से सदा 'गर्म' रखा जाता है, और उनमें कुछ पशु रखे जाते हैं ताकि उन पर रेडियेशन के प्रभाव का अध्ययन किया जा सके।

उसी मंजिल में तीव्र वोल्टेज के वे यन्त्र भी रखे रहते हैं जिन्हें कैन्सर पर किरणें डालने के काम में लाया जाता है।

कैन्सर वास्तव में सैलों के अनियंत्रित, ऊबड़-खाबड़ एवं अनियमित रूप से बढ़ने से पैदा होते हैं। रेडियेशन कैन्सर वाले सैलों को, जीवित सैलों के साथ-साथ, नष्ट करने की क्षमता रखता है। चूंकि कैन्सर वाले सैल बड़ी तेज़ी के साथ बढ़ते और विभक्त होते हैं, इसलिये मानव-शरीर में अधिकांश जीवित सैलों की अपेक्षा उन पर रेडियेशन का प्रभाव अधिक

तीव्र होता है। इसीलिये ऐक्स रे किरणों तथा रेडियम के आणविक विस्फोट से उत्पन्न हुई किरणों को कैन्सर की चिकित्सा के लिये प्रयुक्त किया जाता है। रेडियेशन की उचित मात्रा को रसौली के केन्द्रीय भाग पर डालने से ऐसा प्रबन्ध किया जा सकता है कि रेडियेशन की किरणें स्वस्थ तन्तुओं में से गुज़र कर (तथा उन्हें कोई विशेष हानि पहुंचाए बिना) शरीर के बहुत अन्दर वाले भागों में स्थित कैन्सर तक पहुंच जाएं।

ऐसे नए-नए उपायों की खोज की जा रही है जिनसे कैन्सर की रसौलियों को नष्ट करने वाली अधिक शक्तिशाली किरणों को स्वस्थ तन्तुओं को कम से कम हानि पहुँचाते हुए कैन्सर पर डाला जा सके। कुछ यन्त्र तो ऐसे बनाए गए हैं जो रोगी को घुमाते रहते हैं और कुछ ऐसे बनाए गए हैं जो स्वयं रोगी के चारों ओर चक्कर खाते हैं, किन्तु दोनों प्रकार के यंत्रों में यह प्रबन्ध किया गया है कि शरीर के अन्य अर्थात् स्वस्थ, भागों की अपेक्षा रसौली घातक रेडियेशन को अधिक मात्रा में ग्रहण करे। इनमें से एक यंत्र ५ करोड़ वोल्ट ऊर्जा के इलैक्ट्रोनों की 'गोलियों' को कैन्सर पर मारता है। एक और यंत्र, जो स्वयं चक्कर खाता है और जिसके अन्दर रेडियो-सक्रिय कोबॉल्ट प्रयुक्त किया जाता है, इस प्रकार की तथा इतनी शक्ति वाली किरणें फेंकता है जैसी कि करोड़ों रुपये के मूल्य के रेडियम से ही प्राप्त हो सकती हैं। चूंकि कोबॉल्ट-६० (अर्थात् रेडियो-सक्रिय कोबॉल्ट) का उत्पादन आणविक भट्टी में किया जा सकता है, इसलिये वह रेडियम

की अपेक्षा, जो अत्यन्त दुष्प्राप्य पदार्थ है, बहुत सस्ता पड़ता है।

कोबॉल्ट–६० प्रयुक्त करने वाले तथा चक्कर खाने वाले यंत्र द्वारा चिकित्सा प्राप्त करते हुए रोगी को आप देख तो सकते हैं, किन्तु आप उसे उसी कमरे में जाकर नहीं देख सकते जिसमें चिकित्सा हो रही हो। यंत्र के संचालक के साथ-साथ आप भी एक विशेष खिड़की में से कमरे में झांक सकते हैं। यह खिड़की १½ फुट मोटी होती है और यह मोटाई 'ज़िंक ब्रोमाइड' नामक एक रसायन से भरी हुई होती है। यह खिड़की आपकी दृष्टि को तो नहीं रोकती, किन्तु कमरे के अन्दर वाली खतरनाक किरणों को बाहर आने से अवश्य रोक देती है। यदि कोई डाक्टर या नर्स या अन्य कर्मचारी एक के बाद एक रोगी की देख-भाल के लिये कमरे के अन्दर रहे तो निस्सन्देह वह रेडियेशन की खतरनाक मात्रा को धारण कर लेगा।

यंत्र के बीच का भाग खुला हुआ होता है। रोगी को स्ट्रैचर पर लिटा कर स्ट्रैचर को उस खुले हुए भाग में रख दिया जाता है। रोगी के चारों ओर प्लास्टर का बना हुआ एक कपड़ा लपेट दिया जाता है और रोगी को उचित स्थान पर लिटा दिया जाता है। उसके बाद कोबॉल्ट की किरणें रसौली के मध्य भाग पर डाली जाती हैं।

बाल्टी की शक्ल का यूरेनियम का बना हुआ ८५० पौंड वज़नी एक बर्तन कोबॉल्ट को वश में रखता है। यह बर्तन अपने पथ पर एक मिनट में दो बार चक्कर लगाता है।

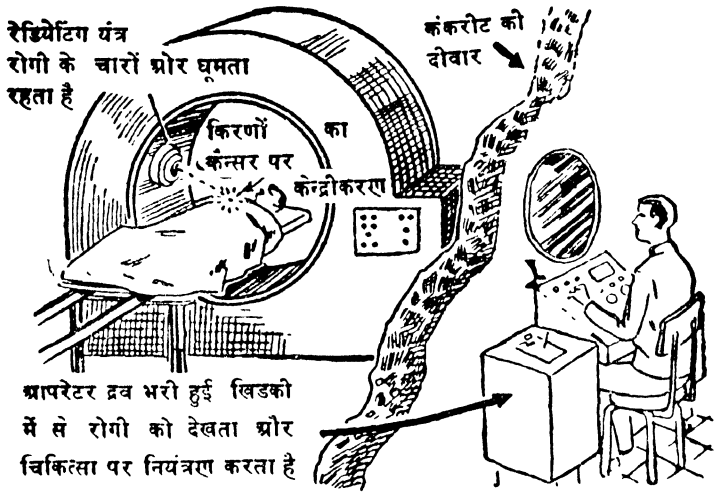

कोबॉल्ट से निकलने वाली किरणों को रोकने के लिये अन्य चिकित्सा-यंत्रों में ३३०० पौंड सीसा प्रयुक्त किया जाता है। वही काम इस यंत्र में यूरेनियम का यह ८५० पौंड वज़न का बर्तन करता है। अदृश्य किरणें रोगी के स्वस्थ तन्तुओं पर, काफी बड़े क्षेत्र में, पड़ती हैं, किन्तु रेडियेशन के वृत्त के केन्द्र में रसौली को रखा जाता है और किरणें रसौली पर केन्द्रित करके डाली जाती हैं। इस तरह से रसौली के सैलों पर आस-पास के स्वस्थ भागों की अपेक्षा घातक किरणें अधिक मात्रा में पड़ेंगी। यह मशीन पहले-पहल सन् १९५४ की ग्रीष्म-ऋतु के प्रारम्भ में प्रयुक्त की गई थी। इसके प्रयोग के प्रारम्भिक परिणाम डाक्टरों की आशा से भी अधिक अच्छे निकले थे।

हस्पताल की सबसे नीचे-वाली उपरोक्त मंजिल के उस कमरे में, जिसमें कोबॉल्ट-चिकित्सा-यंत्र रखा रहता है, तथा

कुछ अन्य कमरों में डाक्टर लोग नए-नए डिज़ाइनों की मशीनें प्रयुक्त करके कैन्सर रोग के सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करते रहते हैं।

पृथ्वी के नीचे वाली दूसरी मंज़िल में एक ओर वह 'गुफा' बनी हुई है जिसमें रखे हुए 'गर्म' आइसोटोपों पर दूरस्थ नियन्त्रकों द्वारा काम किया जा सकता है। उस स्थान के पास ही 'गर्म' अणुओं का भंडार है। यहां आइसोटोपों को सीसे के बर्तनों में डालकर इन बर्तनों को फ़ौलाद की नलिकयों में रखा जाता है। ये नलिकयां ८ फुट मोटी ठोस कंकरीट में जड़ी हुई होती हैं। इसी मंज़िल में अणु-भंडार तथा कई प्रयोगशालाओं के अतिरिक्त एक आणविक 'धोबी-शाला' भी है। यहां हस्पताल तथा प्रयोगशालाओं में प्रयुक्त होने वाले प्रत्येक तौलिये, चादर, दस्ताने तथा सब कपड़ों आदि में रेडियो-सक्रियता का पता लगाने के लिये गेइगर-मापक यंत्र से उनकी जांच की जाती है। यदि यंत्र खतरा प्रकट करे तो इस आणविक धोबी-शाला में उस वस्तु को विशेष रीति से धोया तथा सुखाया जाता है। ऐसा करने से इनमें से बहुत-से कपड़ों को रेडियो-सक्रियता नष्ट हो जाती है और इसके बाद उन्हें साधारण धोबी-शाला में भेज दिया जाता है। जो जूते, कपड़े आदि अधिक 'गर्म' हो गए हों उन्हें कुछ दिनों के लिये एक विशेष स्थान पर रख छोड़ते हैं, जिससे ढीले-ढाले अणु काफी संख्या में टूट जाते हैं और उन वस्तुओं की रेडियो-सक्रियता सुरक्षित स्तर तक कम हो जाती है।

आरगोन कैन्सर रिसर्च हस्पताल के भवन की भूमि से

ऊपर वाली दूसरी मंज़िल में प्रबन्ध-सम्बन्धी कार्यालय तथा वे उद्योग-शालाएं हैं जिनमें नए-नए यंत्र बनाए जाते हैं। उससे ऊपर वाली मंजिल में प्रयोगशालाएं तथा उनसे सम्बंधित कार्यालय हैं। इन प्रयोगशालाओं में डाक्टर लोग कैन्सर-सम्बंधी समस्याओं का तथा रेडियेशन से होने वाली हानि का विशेष अध्ययन करते हैं।

यदि आप किसी रोगी से मिलने के लिये हस्पताल में जाएं तो वह आपको चौथी या पांचवीं मंजिल में मिलेगा। इन दोनों मंजिलों में कुल-मिलाकर केवल पचास पलंग हैं, इसलिये डाक्टर लोग बहुत छांटकर रोगियों को हस्पताल में भर्ती करते हैं। रोगियों को छांटने में उनकी हालत तथा अनुसंधान-कार्य के लिये उनकी उपयुक्तता का ध्यान रखा जाता है।

ज्यों ही आप हाल में, जिसके फ़र्श प्लास्टिक से ढके हुए होते हैं, घुसते हैं तो आप देखेंगे कि प्रत्येक कमरे के दरवाजे पर एक तख्ती लटक रही है जिस पर उस रेडियो-सक्रिय पदार्थ का नाम लिखा हुआ है जिसका उस कमरे के रोगियों पर प्रयोग किया गया है। साथ ही रेडियेशन की तीव्रता का भी संकेत दिया जाता है। किसी दरवाजे की तख्ती पर 'रेडियो-सक्रिय स्वर्ण' लिखा मिलेगा तो किसी पर फ़ास्फ़ोरस, किसी पर आयोडीन तो किसी पर क्रोमियम। हस्पताल के कर्मचारी विशेष प्रकार के गाउन और रबड़ के दस्ताने पहनकर तथा कभी-कभी अपने जूतों के ऊपर प्लास्टिक के बड़े जूते पहनकर उन कमरों में जाते हैं जिनमें रेडियेशन का प्रयोग किया गया हो। जब तक रेडियेशन के प्रयोग के बाद ४८ घंटे न बीत

जाएं तब तक आम-तौर पर मिलने वालों को उन कमरों के अन्दर नहीं जाने दिया जाता। यह सावधानी बरतने का केवल यही कारण नहीं है कि बाहर वालों को छूत से बचाया जाए, वरन् इससे भी बड़ा कारण यह है कि सारे हस्पताल को छूत से बचाया जाए, क्योंकि बाहर के बहुत-से लोग यदि रेडियेशन की थोड़ी-थोड़ी मात्रा भी कमरों में से लाकर हस्पताल के बरामदों में छोड़ते रहेंगे तो धीरे-धीरे रेडियेशन बहुत बड़ी मात्रा में वहां एकत्रित हो जाएगा। इसी कारण से रोगियों के कमरों की दीवारें ८ इन्च मोटी कंकरीट की बनी हुई होती हैं तथा फ़र्श प्लास्टिक के बने हुए होते हैं, ताकि उनकी सफ़ाई सरलता-पूर्वक की जा सके।

आपको केवल उन्हीं रोगियों से मिलने की इजाज़त दी जाती है जिन्हें हस्पताल से छुट्टी मिलने वाली हो, क्योंकि

उनका कमरा 'गर्म' नहीं होता। आपको ऐसे रोगी एक ऐसे कमरे में आराम करते हुए मिलेंगे जिसका वातावरण अत्यन्त सुखद होगा और जिसकी दीवारों पर दो प्रकार के हरे रंगों का रोग़न किया हुआ होगा।

वह आपको बड़े चाव से उस 'कॉकटेल' पेय के सम्बन्ध में सुनाएगा जो रेडियो-सक्रिय आयोडीन मिलाकर उसे पिलाया गया था। उसकी थाइरॉएड नामक गिल्टी, जो गले के नीचे होती है, ठीक तरह से काम नहीं कर रही थी। स्वस्थ थाइरॉएड गिल्टी शरीर के अन्य भागों की अपेक्षा ८००-गुणा अधिक आयोडीन ग्रहण करती है। यदि गिल्टी रुग्ण होगी तो वह इससे तीव्र अथवा हल्की गति से आयोडीन ग्रहण करेगी। इस गति को नापने के लिए एक रोगी को रेडियो-सक्रिय आयोडीन के एक औंस का दस-करोड़वां भाग किसी पेय में, जिसका स्वाद पानी जैसा था, डालकर दिया गया।

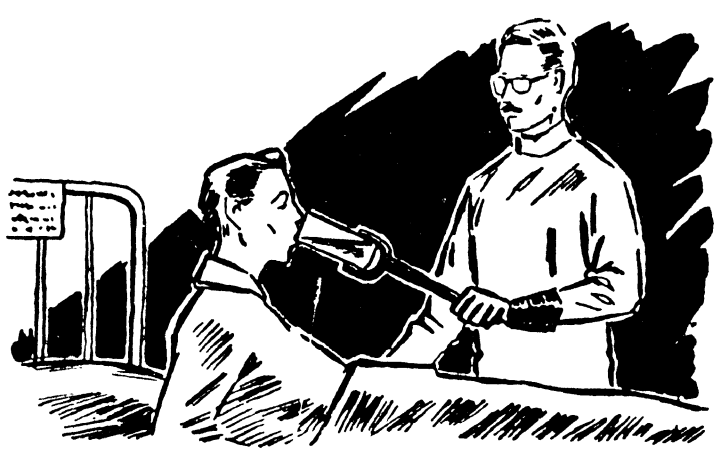

डाक्टर ने 'आणविक पेय' रोगी को देते समय धातु के चिमटों का प्रयोग किया था, क्योंकि डाक्टर बार-बार इन घातक किरणों के सम्पर्क में आते हैं और ये किरणें धीरे-धीरे उनके शरीर में खतरनाक सीमा तक एकत्रित होती चली जाती हैं, जबकि रोगी केवल थोड़े-से समय के लिए ही किरणों के प्रभाव में आता है। वह बिना किसी खतरे के रेडियो-सक्रिय आयोडीन को, जिसे उसके पीने के पानी में बड़ी सावधानी के साथ मिला दिया गया था, पी सकता है।

थाइरॉएड गिल्टी, चाहे वह स्वस्थ हो चाहे रुग्ण, रेडियो-सक्रिय आयोडीन का उसी तरह अवशोषण करती है जिस तरह साधारण आयोडीन का। आणविक आयोडीन पीने के कुछ ही घंटे बाद उपरोक्त रोगी की थाइरॉएड गिल्टी ने रेडियो-सक्रियता की काफी मात्रा अवशोषित कर ली। उसके गले पर गिल्टी के आस-पास थोड़ी-थोड़ी देर में गेइगर-मापक यंत्र रखकर रेडियो-सक्रियता की मात्रा की जांच-पड़ताल की गई। यंत्र की ध्वनि के अनुसार डाक्टर पता लगाते रहे कि रोगी की थाइरॉएड गिल्टी न्यून या अधिक—कितनी मात्रा में—आयोडीन का अवशोषण कर रही है।

हस्पताल की छठी मंजिल में और अधिक अनुसन्धान होता है। अन्य अनुसन्धानों के अतिरिक्त वहां रेडियो-कार्बन, रेडियो-हाइड्रोजन तथा रेडोन पर परीक्षण हो रहे हैं। रासायनिक पदार्थों को ढूंढ़ निकालने तथा उन्हें चिह्नित करने के काम के लिए रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग किया जा रहा

है। इस तरह डाक्टर लोग उन पदार्थों का पता लगा रहे हैं जो गिल्टियों को बढ़ाने वाले हैं या उन्हें नष्ट करने वाले हैं।

सातवीं मंज़िल में 'पशु-शाला' है। यहां चूहे, खरगोश, आदि प्राणी एयर-कण्डीशन-युक्त सुख-सुविधा में रहते हैं, ताकि अनुसन्धान-कर्ताओं को जब भी उनकी आवश्यकता पड़े वे उसी समय उनके लिए उपलब्ध हो सकें। प्रति सप्ताह वहां एक विशेष जाति के चूहों के लगभग एक सहस्र बच्चे पैदा होते हैं। इनमें से अनेकों चूहे विशेष प्रकार के रेडियेशन-सम्बन्धी प्रयोगों में काम आते रहते हैं। इन प्रयोगों में वे २½ लाख वोल्ट की दो मशीनों से ऐक्स-रे ग्रहण करते हैं। कुछ चूहों को रेडियो-सक्रिय रसायन खिलाए या पिलाए जाते हैं और फिर उनमें से कुछ का आपरेशन एक विशेष 'पशु-आपरेशन-भवन' में किया जाता है।

अन्तिम अर्थात् आठवीं मंजिल में वे यन्त्र लगे हुए हैं जो सारे हस्पताल-भवन में वायु का संचालन एवं नियन्त्रण करने तथा फ़ालतू गैसों को बाहर फेंकने का काम करते हैं।

प्रत्येक मंजिल में टूटते हुए अणुओं की किरणों से बचाव की समस्या की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। एक स्वास्थ्य-वैज्ञानिक गेइगर-काउंटर की सहायता से सारे हस्पताल का निरीक्षण करता रहता है और हस्पताल के प्रत्येक कर्मचारी का यह रिकार्ड रखता है कि उसने कितनी रेडियो-सक्रियता ग्रहण की है। जहां एक ओर यह बात सत्य है कि रेडियेशन कैन्सर को नष्ट कर देता है, वहां, दूसरी ओर,

यह बात भी सत्य है कि रेडियेशन की अधिक मात्रा शरीर पर पड़ने से कन्सर रोग उत्पन्न हो जाता है।

लौंग आइलैंड, न्यूयार्क, में ब्रुकहेवन नैशनल प्रयोगशाला के निकट ही एक और हस्पताल है जिसका नाम ब्रुकहेवन हस्पताल है। इस हस्पताल में भी उतनी ही सावधानी बरती जाती है जितनी आरगोन के हस्पताल में। यहां 'कौस्मोट्रोन' नामक विशाल विदारक-यंत्र तथा अन्य अणु-विदारक यंत्रों को प्रयुक्त करके कैन्सर के सम्बन्ध में अधिकाधिक ज्ञान प्राप्त किया जाता है। एक प्रकार की चिकित्सा में बोरोन नामक रसायन के करोड़ों ऐसे अणु जिनमें रेडियो-सक्रियता नहीं होती उन रोगियों के रक्त में इन्जैक्शन द्वारा डाल दिए जाते हैं जिनके मस्तिष्क में रसौली होती है। यह रसायन रसौली में एकत्रित हो जाता है, मानो वह स्वस्थ तन्तुओं की अपेक्षा उसे अधिक पसन्द करता हो। फिर रोगी पर 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' द्वारा संचालित ब्रुकहेवन प्रयोगशाला की आणविक भट्टी में उत्पादित न्यूट्रोन छोड़े जाते हैं। ये न्यूट्रोन बोरोन के अणुओं का विदारण कर देते हैं जिससे बोरोन के अणु छोटे अणुओं में विभक्त हो जाते हैं और वे रेडियो-सक्रिय भी हो जाते हैं। इस प्रक्रम में जो ऊर्जा उन्मुक्त होती है वह रसौली के सैलों पर आक्रमण करती है और रसौली को नष्ट कर डालती है। इस चिकित्सा-पद्धति द्वारा जिन रोगियों की चिकित्सा की जाती है उनमें से अधिकांश लोगों को लाभ पहुंचता है, यद्यपि यह पद्धति अभी परीक्षण के स्तर पर ही है।

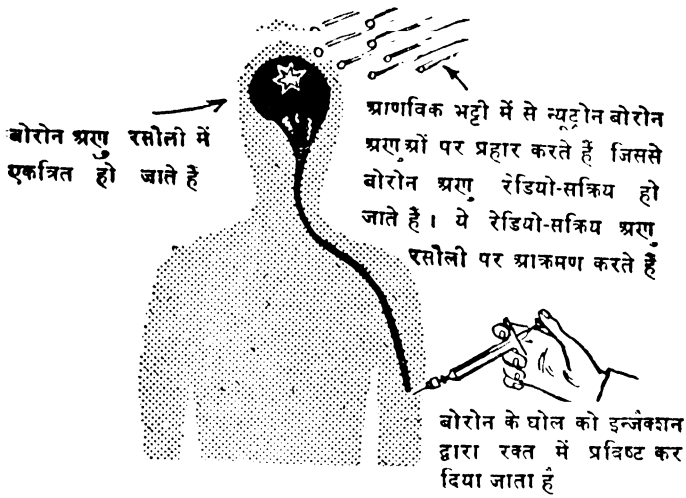

लोग कैन्सर के विरुद्ध निरन्तर युद्ध कर रहे हैं। यह युद्ध 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' द्वारा संचालित कैन्सर-अनुसंधान हस्पतालों में, अन्य प्रयोगशालाओं में तथा प्राइवेट हस्पतालों में लड़ा जा रहा है। नीचे हम कुछ उदाहरण दे रहे हैं कि किस तरह आणविक भट्टियों में निर्मित रेडियो-आइसोटोप इस युद्ध में सहायता दे रहे हैं।

बर्कले में कैलिफ़ोर्निया-विश्वविद्यालय में एक 'गामा-किरण-मापी' यंत्र का प्रयोग करके रोगी के शरीर में थाइरॉएड के कैन्सरीय फैलावों का पता लगाया जाता है जो रुग्ण थाइरॉएड गिल्टी से बढ़ जाते हैं।

अमरीका और कनाडा के कुछेक हस्पतालों में 'कोबॉल्ट चिकित्सा-यंत्र,' जिन्हें 'थिरेट्रोन' कहते हैं, कैन्सर पर अपनी घातक किरणों से प्रहार करते हैं। इस यंत्र का बनाने का

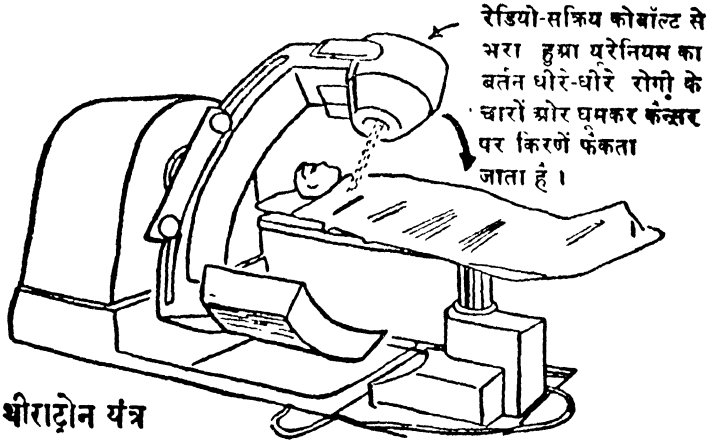

थीराट्रोन यंत्र

श्रेय न्यूयार्क के 'फ्रान्सिस डेलाफील्ड हस्पताल' में काम करने वाले डाक्टरों तथा 'एटॉमिक इनर्जी आफ कनाडा लिमिटेड' को है।

इसी प्रकार फ़िलाडेलिफ़िया (पैन्सिल्वानिया) के 'लैंकेनौ हस्पताल' में कोबॉल्ट का एक घूमने वाला यंत्र कई प्रकार की गिल्टियों और रसौलियों पर रेडियेशन की मार करता है। इन यंत्रों में कनाडा के ओन्टारियो नामक स्थान में बनी हुई आणविक भट्टी में निर्मित कोबॉल्ट-६० अणु प्रयुक्त किये जाते हैं। इस यंत्र में से उतना रेडियेशन प्राप्त होता है जितना पांच करोड़ डालर मूल्य के रेडियम से प्राप्त हो सकता है। और फिर इतना रेडियम चिकित्सा-कार्यों के लिये भूमि में से आज तक निकाला भी नहीं जा सका है। इस सम्पूर्ण यंत्र का मूल्य (जिसमें कोबॉल्ट का मूल्य भी सम्मिलित है) केवल ७५

सहस्र डालर बैठा। मनुष्य के इस नए ज्ञान ने, कि अणु का किस तरह विदारण किया जा सकता है, यह बात सम्भव बना दी।

कई बातों में कोबॉल्ट-६० रेडियम से भी उत्तम है; किन्तु इसमें एक यह दोष भी है कि यह रेडियम की अपेक्षा बहुत शीघ्र निष्प्रभाव हो जाता है। आप कोबॉल्ट से कितने भी रोगियों की चिकित्सा करलें—चाहे उनकी संख्या थोड़ी हो अथवा अधिक—आधे कोबॉल्ट अणु ५ वर्ष, ३ महीने और १८ दिन की अवधि में ठोस 'निकल' के अणुओं में परिणत हो जाएंगे। किन्तु रेडियम के, चाहे उसकी मात्रा कम हो या अधिक, आधे अणु १६०० वर्षों में टूटेंगे। कोबॉल्ट के इस दोष का निवारण इस तरह किया जाता है कि आणविक भट्टी में नए कोबॉल्ट का निर्माण होता रहता है; उस नए कोबॉल्ट को पुराने कोबॉल्ट के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है।

आणविक उद्योग-केन्द्रों की भट्टियों में कोबॉल्ट-५९ काफ़ी परिमाण में 'पकता' रहता है। जब वह 'पक' कर तैयार हो जाता है—अर्थात् जब उसकी काफ़ी मात्रा कोबॉल्ट-६० में परिणत हो जाती है—तो उसे एक बर्तन में डालकर एक दूरस्थ नियंत्रक की सहायता से १०-फुट गहरे पानी की तह में रख दिया जाता है। जब तक उसकी रेडियो-सक्रियता नष्ट नहीं हो जाती तब तक सीसे या यूरेनियम की 'ढाल' कर्मचारियों का उससे बचाव करती है। उसकी किरणों को

केवल उसी समय निकलने दिया जाता है जब उन्हें रुग्ण सैलों पर डालना हो।

यद्यपि रेडियो-सक्रिय अणुओं के प्रयोग के परिणाम इतने आश्चर्यजनक नहीं निकले जितने की आशा की जाती थी, फिर भी सफल चिकित्सा के लिये उन्होंने एक नया मार्ग खोल दिया है। अणु से निकला हुआ शक्तिशाली रेडियेशन मानव-जाति के रोगों के विरुद्ध संघर्ष में उसका महान सहायक सिद्ध हो रहा है।

चिकित्सा के क्षेत्र में अणु-ऊर्जा की सहायता के कुछेक उदाहरण हमने इस अध्याय में दिये हैं। सारांश यह है कि रेडियो-आइसोटोपों ने अनेकों 'असाध्य' रोगों की चिकित्सा सम्भव बना दी है और रोगों के विरुद्ध हो रहे युद्ध में एक नया मोर्चा स्थापित कर दिया है।

कई प्रकार के एनीमिया (रक्त की कमी) के कारणों को समझने में रेडियो-सक्रिय अणुओं से बड़ी सहायता मिली है। रक्त के लाल जीवाणुओं (सैलों) में कई प्रकार के रेडियो-सक्रिय अणु डालकर डाक्टर लोग शरीर में इन जीवाणुओं के उत्पन्न होने, जीवित रहने तथा नष्ट होने की प्रक्रियाओं का भली-भांति अध्ययन कर सकते हैं। रक्त के स्थान पर दूसरे कृत्रिम पदार्थों के प्रयोग तथा रक्त की कमी वाले रोगियों के शरीर में दूसरे व्यक्ति का रक्त अधिक सुरक्षित रूप से डालने के सम्बन्ध में रेडियो-आइसोटोप बहुत लाभदायक सिद्ध हुए हैं। केवल इसी एक क्षेत्र में इस नए साधन की कृपा

से सहस्रों जीवन बच सके हैं और करोड़ों रुपये की बचत हुई है।

आणविक ऊर्जा के उद्योग ने रेडियो-आइसोटोपों का तथा रेडियेशन का जो असीम, अक्षय स्रोत मनुष्य के लिये उपलब्ध कर दिया है वह सम्भवतः चिकित्सा-विज्ञान की प्रगति में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण चरण प्रमाणित होगा।

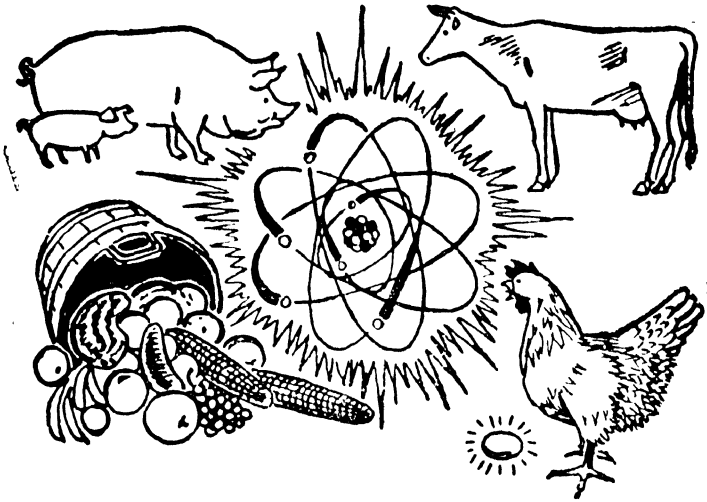

: ८ :

अणु और कृषि

'आणविक फार्म' अमरीका में स्थान-स्थान पर फैले हुए हैं। उनमें से अनेक फार्मों पर वैज्ञानिक लोग अनुसंधान करके इस बात का पता लगा रहे हैं कि अधिक अच्छे पौधे किस तरह उगाए जाएं, खाद के प्रयोग के अधिक अच्छे ढंग क्या हैं, तथा फसलों को बीमारियों और कीड़ों आदि से किस तरह बचाया जाए। वे इस बात का भी पता लगा रहे हैं कि पौधे किस तरह खूराक तैयार करते हैं। कुछ वैज्ञानिक आणविक

बीन की। कुछ दिनों के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि ये दावे ग़लत हैं। साथ ही उन्होंने यह चेतावनी भी दी कि खेतों में डालने के लिये जब यह खाद तैयार की जाएगी उस समय उससे उठने वाली धूल से खतरा भी हो सकता है। हो सकता है कि यह धूल सांस द्वारा कृषकों के फेफड़ों में चली जाए और या तो वह वहीं जम जाए या फिर वह उनकी हड्डियों तक जा पहुंचे। खाद में रेडियो-सक्रियता चाहे कितनी भी सूक्ष्म मात्रा में विद्यमान हो, किन्तु धूल के बार-बार सांस द्वारा फेफड़ों में जाने से बहुत हानि हो सकती है। रेडियो-सक्रिय खाद के सम्बन्ध में परीक्षणों द्वारा जब वास्तविक बात ज्ञात हुई तब कहीं जाकर कृषक लोगों ने यह खाद खरीदनी बन्द की, जिससे उनका रुपया तो नष्ट होने से बचा ही, साथ ही सम्भवतः उनके प्राण भी बच गए।

उर्जा का प्रयोग खेती के पशुओं पर करके उनके सम्बन्ध में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त कर रहे हैं ताकि वे कृषकों के लिये अधिक उपयोगी बन सकें।

आपको न तो आणविक खेत के पास से गुज़रने का डर है, न ही आपको ऐसे किसी फार्म के किसी दुधारू पशु का दूध भेजा जाएगा, और न ही आणविक फार्मों की मुर्गियों से अंडे लेकर स्थानीय दुकान में भेजे जाएंगे। आणविक-कृषि-सम्बन्धी सारा कार्य अभी तक बड़ी-बड़ी अनुसंधान-संस्थाओं के ही हाथ में है। ब्रुकहेवन, आरगोन तथा ओक-रिज आदि बड़ी-बड़ी राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं में अमरीकी सरकार ही इस योजना में मुख्य भाग ले रही है। अनेक बड़े-बड़े कालिज, विश्व-विद्यालय तथा कृषि-अनुसंधान संस्थाएं अपने प्रयोग-फार्मों पर रेडियो-आइसोटोपों को संकेतक अणुओं के रूप में प्रयुक्त कर रही हैं। अभी यह स्थिति नहीं आई है कि साधारण कृषक अणुओं का उपयोग अपने-अपने फार्मों पर कर सकें, किन्तु निश्चय ही वे लोग अनुसंधान-कर्ताओं के इन नए निष्कर्षों से भविष्य में बहुत लाभ उठाएंगे।

दूसरे विश्व-युद्ध के बाद यह अफ़वाह फैलाई गई कि निकट भविष्य में रेडियो-सक्रिय खाद प्रयुक्त की जाएगी और उससे मिट्टी पर चमत्कारिक प्रभाव पड़ेगा। उन दिनों बहुत-से कृषकों ने रेडियो-खाद खरीद ली और उसे अपनी साधारण खाद में मिला दिया।

'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' तथा सरकारी फार्मों ने मिलकर रेडियो-सक्रिय खाद के सम्बन्ध में किये गए दावों की छान-

अमरीकी सरकार संकेतक अणुओं को लेकर खाद पर जो परीक्षण करती है उससे हर साल कृषकों का विपुल धन बच जाता है और साथ ही लोगों को अधिक अच्छे अन्न आदि उपलब्ध हो जाते हैं। नार्थ कैरोलिना के सरकारी कृषि-महाविद्यालय में एक परीक्षण किया गया था जिससे यह प्रमाणित हुआ कि जो रासायनिक खाद खेतों में डाली जाती है उसमें सूपर-फ़ौस्फ़ेट वाला अंश तम्बाकू की उपज में कोई लाभ नहीं पहुंचाता। इस निष्कर्ष के फलस्वरूप अब हर साल ४००० टन फ़ौस्फ़ेट-खाद बचने लगी है।

अनुमान है कि अमरीका के कृषक प्रति वर्ष १० करोड़ डालर की खाद अपने खेतों में प्रयुक्त करते हैं। रेडियो-आइसोटोपों की सहायता से उन्हें अब यह बतलाया जाता है कि किस तरह वे अपने इस धन से पूरा-पूरा लाभ उठा सकते हैं। इन अणुओं को प्रयुक्त करके यह पता लगाया जा रहा है कि किस जिन्स के लिये कौन-सी खाद कितनी मात्रा में सब से अच्छी रहती है। इसके अतिरिक्त यह भी पता लगाया जा रहा है कि अमुक खाद को खेतों में प्रयुक्त करने के लिये कौनसा समय और कौनसी रीति सब से अधिक लाभदायक है। परीक्षणों के लिये रेडियो-सक्रिय अणुओं के उपलब्ध होने से पहले वर्षा और तापमान के परिवर्तन तथा पौधों की बीमारियां खाद के लाभ का ठीक-ठीक अनुमान नहीं लगने देती थीं। किन्तु अब वैज्ञानिक लोग संकेतक अणुओं को खाद में प्रयुक्त करके मिट्टी से शुरू करके पौधे के विभिन्न भागों में उनके पहुँचने तक उनका निरीक्षण कर सकते हैं।

उनकी मात्रा का पता लगाकर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पौधे ने वास्तव में खाद की ठीक कितनी मात्रा का अवशोषण किया।

किन्तु जिस क्षेत्र में कुछ विस्मय-जनक काम हुआ है वह है पौधों की अधिक अच्छी किस्मों का उगाना। यह बात वैज्ञानिकों को बहुत समय से ज्ञात है कि विशेष प्रकार के रेडिएशन का प्रभाव पड़ने से ऐसे परिवर्तन हो जाते हैं जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में संक्रमण कर सकते हैं। इन परिवर्तनों को 'म्यूटेशन' परिवर्तन कहते हैं। ब्रुकहेवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला के डाक्टर काल्विन कौन्ज़ंक ने जई पर न्यूट्रोनों से प्रहार करके जई की एक ऐसी किस्म उपजाने में सफलता प्राप्त की है जिस पर कीड़े लगने का रोग आक्रमण नहीं कर सकता। एक-डेढ़ वर्ष की अवधि में वे एक ऐसा बीज तैयार करने में

सफल हो गए जो विशेष आवश्यकताओं को पूरा कर सकता है। पौधों की नस्ल सुधारने के पुराने तरीकों से इस कार्य में कम-से-कम १० वर्ष लगते और अपेक्षाकृत बहुत अधिक रुपया खर्च हो जाता।

मान लीजिये हम अनाज की ऐसी नस्ल उपजाना चाहते हैं जिसके पौधे पर पत्ता-फुई नाम का रोग आक्रमण न कर सके। क्लोरिडा प्रान्त में शरद्-ऋतु में यह रोग इतने व्यापक और तीव्र रूप में फैलता है कि हर साल लगभग २५००० एकड़ खेतों पर दवाई छिड़कनी पड़ती है। यदि कोई ऐसा पौधा तैयार कर लिया जाए जिस पर इस रोग का आक्रमण न हो सके तो दवाई छिड़कने का यह सारा खर्च और झंझट दूर हो सकता है।

ब्रुकहेवन में गर्मियों में बीजों पर रेडियेशन डालकर और आने वाली सर्दियों में फ्लोरिडा में उन्हें बोकर, एक वर्ष से कम अवधि में ही इस बात की जांच करली जाती है कि बीजों में रोग-निरोधक शक्ति उत्पन्न हो गई है या नहीं। प्रकृति में 'परिवर्तन' बड़ी देर में होता है, किन्तु रेडियेशन उसे बहुत शीघ्र ला सकता है।

रेडियेशन को प्रयुक्त करने का उद्देश्य पौधों में केवल रोग-निरोधक शक्ति उत्पन्न करना ही नहीं होता। उसकी सहायता से एक प्रकार की मटर उपजाई जा रही है जो प्रति एकड़ ३० प्रतिशत अधिक पैदा होती है। एक और क़िस्म तैयार की गई है जिसकी आकृति और आकार मशीनों द्वारा बुवाई किये जाने के लिये अधिक उपयुक्त है। रेडियेशन की सहायता से

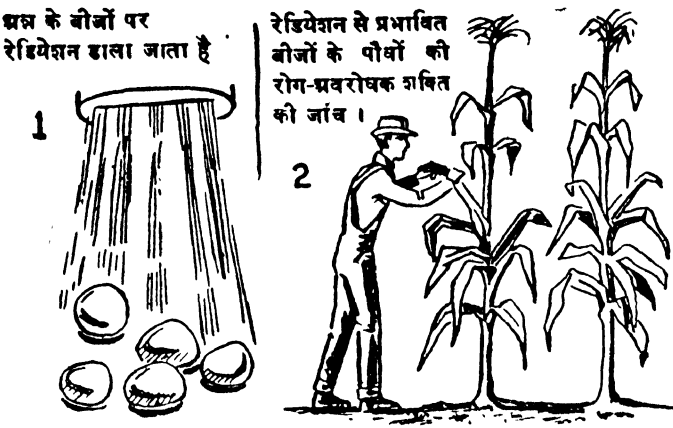

बीजों और पौधों की नस्लों में जो परिवर्तन किये गए हैं उनमें कुछेक ही ऊपर दिये गए हैं ।

किन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि ये सभी परिवर्तन अच्छे हैं । जब किसी खेत पर रेडियेशन डालकर उसमें पौधे उगाये जाते हैं तो उनमें से अच्छे परिवर्तन वाले पौधों को छांटना पड़ता है । अच्छी किस्म का पौधा हज़ारों में एकाध ही निकलता है; शेष हज़ारों पौधों को फेंक दिया जाता है ।

पौधों पर रेडियेशन डालने का एक तरीक़ा 'गामा-खेत' है । अनाज के आप किसी तीन-एकड़ फार्म के पास से जा रहे हैं जो देखने में बिल्कुल साधारण लगता है, किन्तु यदि आप उस खेत में घुसेंगे तो वे अदृश्य किरणें, जो पौधों पर प्रहार कर रही हैं, आपको हानि पहुंचाएंगी । ऐसे खेत के बीच में कोबॉल्ट-६० की सूक्ष्म-सी मात्रा को स्टेनलैस-स्टील

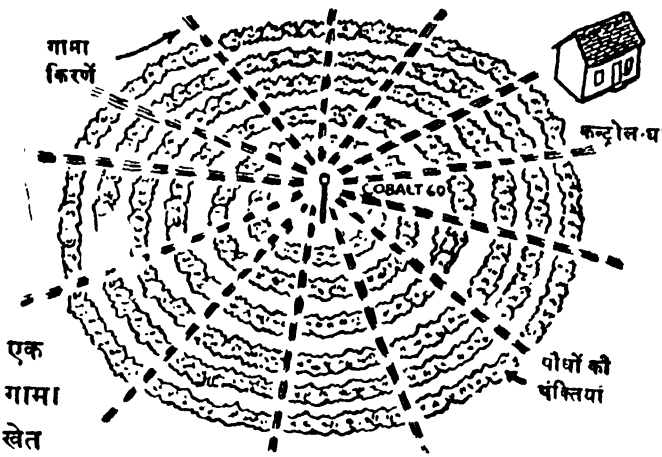

की एक नल्की में बन्द करके रख दिया जाता है। यह वही कोबॉल्ट-६० रेडियो-आइसोटोप होता है जिसे चिकित्सा तथा उद्योगों के क्षेत्र में रेडियम तथा ऐक्स-रे की बजाय विशाल पैमाने पर प्रयुक्त किया जा रहा है और जिसकी किरणें कैन्सर पर डाली जाती हैं। अनाज के उपरोक्त खेत में कोबॉल्ट-६० को तार द्वारा कन्ट्रोल-घर से मिला दिया जाता है जो खेत के एक सिरे पर बनाया जाता है। किसी व्यक्ति को उस समय तक खेत में घुसने नहीं दिया जाता जब तक कि कोबॉल्ट-६० को सीसे के डब्बे में डालकर धरती में नहीं दबा दिया जाता। रेडियेशन जो पौधों में परिवर्तन पैदा करता है मनुष्य के लिए हानिकारक होता है।

१०-एकड़ के एक खेत में कई विभिन्न प्रकार के पेड़-पौधे, झाड़ियाँ, बेलें आदि खेत के केन्द्र में स्थित रेडियेशन

के स्रोत के चारों ओर उगी हुई मिलेंगी। इन पौधों की जिन शाखाओं पर विलक्षण प्रकार के फल लग जाते हैं उन्हें काटकर उसी जाति के साधारण पौधे पर उनकी क़लम लगा दी जाती है।

छोटे-छोटे पौधों के परिवर्तन भी मनुष्य के लिए कई बार बड़े लाभदायक होते हैं। आजकल अधिकांश पैनिसिलीन एक ऐसे ही पौधे से उत्पन्न की जाती है जिसकी नस्ल को रेडियेशन द्वारा परिवर्तन करके सुधारा गया है।

परिवर्तनों में कृत्रिम रूप से शीघ्रता लाने की इस नई रीति से कृषि में एक नया युग प्रारम्भ हो गया है। कई नए और उत्तम प्रकार के पौधों की उत्पत्ति की आशा की जा रही है।

पौधों की बीमारियों पर एक और तरह से भी आक्रमण किया जा रहा है। जहां एक ओर मनुष्य ऐसे पौधे उगाने का प्रयत्न कर रहा है जो रोग-निरोधक हों, वहां, दूसरी ओर, प्रकृति कीड़ों और कीटाणुओं की ऐसी नई नस्लें पैदा कर रही है जो नई बीमारियां उत्पन्न कर रही हैं। इन नई बीमारियों का मुकाबला करने के लिए लोग नए-नए रसायन और फुई-नाशक पदार्थ तैयार कर रहे हैं। वे उन कीड़ों का पूरा-पूरा अध्ययन कर रहे हैं जो पौधों में बीमारियां उत्पन्न करते हैं।

रेडियो-सक्रिय अणुओं की सहायता से लोगों को कीटाणुओं और कीड़ों के जीवन तथा उनकी आदतों के सम्बन्ध में नया ज्ञान प्राप्त हो रहा है। इन कीड़ों और

कीटाणुओं के सम्बन्ध में वैज्ञानिकों और कृषकों को आज तक पूरा ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका था। इसका एक उदाहरण लीजिए। पन्द्रह हज़ार मक्खियों को एक ऐसा पेय दिया गया जिसमें रेडियो-सक्रिय फ़ास्फ़ोरस मिला हुआ था। इस तरह से ये मक्खियां 'चिह्नित' हो गईं, अर्थात् उन्हें बाद में उनके शरीर में विदीर्ण होने वाले अणुओं से निकलने वाले रेडियेशन के कारण पहचाना जा सकता था। जिस स्थान से मक्खियों को छोड़ा गया वहां से विभिन्न फ़ासलों पर मक्खियों को पकड़ने के लिए मक्खीदानियां लगा दी गईं। उनमें जो मक्खियां पकड़ी गईं उनके निरीक्षण से पता चला कि मक्खियां पहले दिन चार मील तक की यात्रा कर लेती हैं। कई मक्खियों ने तो छूटने के स्थान से कुल-मिलाकर २८ मील तक की यात्रा की। इस तरह मक्खियों, मच्छरों, कीड़ों आदि की आदतों और स्वभाव आदि के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त करके वैज्ञानिक लोग उन पर अधिक आसानी से क़ाबू पा सकते हैं।

एक और प्रकार की मादा-मक्खी अपने अंडे पशुओं के घावों में रख देती है। जब अंडों में से कीड़े-जैसे बच्चे निकल आते हैं तो वे उस पशु के मांस को खाकर पलते रहते हैं। इससे घाव सड़ जाते हैं और कई बार पशु मर भी जाता है। इन मक्खियों से प्रति-वर्ष करोड़ों रुपये की हानि हो जाती है।

इन हानिकारक कीड़ों आदि के विरुद्ध रेडियेशन एक बड़े प्रबल अस्त्र का काम दे रहा है। इस मक्खी के नरों की बहुत बड़ी संख्या को कोबॉल्ट के प्रभाव से नपुंसक कर दिया

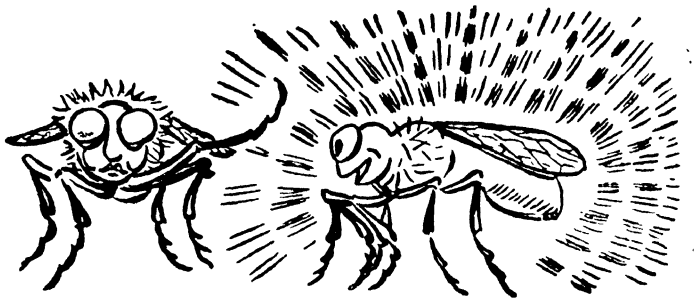

गया। चूंकि इस जाति की मादा-मक्खी केवल एक ही बार सहवास करती है, इसलिए जो मक्खियां ऐसे नरों से सहवास करती हैं जिनको नपुंसक कर दिया गया हो तो उनसे ऐसे अंडे पैदा होते हैं जिनमें से बच्चे नहीं निकलते। नपुंसक नरों को बहुत बड़ी संख्या में छोड़ कर कृषि-विभाग के वैज्ञानिक इन हानिकारक जीवों की संख्या को कम करने की आशा करते हैं।

अमरीका में कई और योजनाएं भी हैं जिनमें रेडियो-आइसोटोपों को प्रयुक्त करके कई अन्य कीड़ों, मच्छरों आदि का अध्ययन किया जा रहा है।

इन सारे प्रयत्नों का उद्देश्य यह है कि उगने वाले पौधों से अधिक उपज प्राप्त की जाए। किन्तु बहुत-से वैज्ञानिक यह भी स्वप्न देख रहे हैं कि पौधे कार्बन-डाइ-ऑक्साइड, पानी और ऊर्जा ग्रहण करके हमें खाद्य-पदार्थ देते हैं, तो इन तीनों चीज़ों को मिलाकर हम उनमें से सीधे ही खाद्य-पदार्थ क्यों न प्राप्त कर लें। पौधे जिस प्रक्रम से खाद्य-पदार्थ तैयार करते हैं (जिसे फ़ोटो-सिन्थेसिस कहते हैं) वह

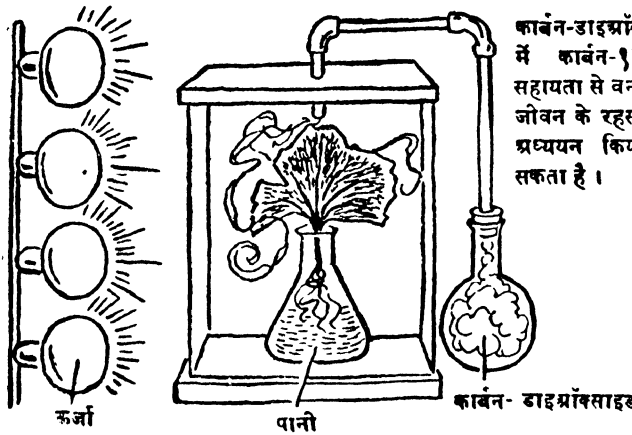

फोटो-सिन्थेसिस और संकेतक अणु

एक अत्यन्त जटिल, रहस्यपूर्ण और विलक्षण प्रक्रम है। साथ ही वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भी है, क्योंकि उसके बिना प्रत्येक प्राणी भूखा मर जाएगा। रेडियो-आइसोटोपों को चिह्नित अणुओं के रूप में प्रयुक्त करके कुछ रहस्यों का उद्घाटन हुआ है। एक उदाहरण लीजिए। कार्बन-डाइऑक्साइड में कार्बन को रेडियो-सक्रिय बनाकर यह पता लगा है कि जब कार्बन-डाइऑक्साइड पौधे में प्रवेश करता है तो उसके प्रथम दो सैकिण्डों में दो या तीन नए रसायन बन जाते हैं। और एक मिनट में कम से कम ५० विभिन्न रसायन बनते हैं। यदि पौधे की पूरी क्रिया के सारे रहस्यों का पता लग जाए और उन रहस्यों को जानकर लोग पौधों और मिट्टी पर निर्भर न रहकर प्राकृतिक शक्तियों और पदार्थों से एकदम खाद्य-पदार्थ तैयार कर सकें तो संसार के करोड़ों भूखे तथा

अर्ध-भूखे लोगों का भला हो सके। आणविक ऊर्जा से सम्पन्न होने वाली किसी भी अन्य सिद्धि की अपेक्षा उपरोक्त सिद्धि मानव-जाति के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने में कहीं अधिक सहायक हो सकती है।

पौधों की खाद्य-पदार्थ-निर्माण-क्षमता की नक़ल करने के अतिरिक्त लोग फ़ोटो-सिन्थेसिस प्रक्रम का अध्ययन इस उद्देश्य से भी कर रहे हैं कि पौधों से अधिक खाद्य-पदार्थ उत्पन्न किया जा सके। पौधे दोपहर के समय सो जाते हैं। यदि सोने की बजाए वे उस समय भी खाद्य-पदार्थ बनाने के काम में लगाए जा सकें तो उनसे अधिक खाद्य-पदार्थ प्राप्त किये जा सकते हैं। रेडियो-आइसोटोपों की सहायता से हम शायद यह बात सम्पन्न कर सकें।

पशु-पक्षियों के ऊपर रेडियो-आइसोटोपों के साथ जो परीक्षण किये जा रहे हैं उनसे भी खाद्य-पदार्थ की मात्रा बढ़ाई जा रही है। एक उदाहरण लीजिये। ओक-रिज में एक वैज्ञानिक ने रेडियो-आइसोटोपों की सहायता से यह अध्ययन किया कि मुर्गियां अंडे किस तरह देती हैं। उसने पता लगाया कि मुर्गियों को जो रेडियो-सक्रिय भोजन दिया गया उसमें से कुछ भोजन उन अंडों में विद्यमान है जो ४० दिन की लम्बी अवधि के बाद तक मुर्गियों ने दिये। छोटी मुर्गी के अन्दर अंडा साधारणतया ८ दिन में बनता है, किन्तु उपरोक्त परीक्षण के फल-स्वरूप अंडों के अन्दर उस भोजन की भी थोड़ी-बहुत मात्रा मिली जिसे मुर्गी ने एक महीना पहले खाया था। अंडों के निर्माण की विधि के सम्बन्ध में अधिकाधिक

जानकारी प्राप्त करके वैज्ञानिक आशा रखते हैं कि वे मुर्गियों से अधिक अंडे प्राप्त कर सकेंगे।

मुर्गियों और सूअरों को अधिक मोटा बनाने वाले एक रसायन पर रेडियो-सक्रियता द्वारा परीक्षण किये गए। यह रसायन सूअरों को इसलिये पिलाया गया कि उनकी थाइरॉएड गिल्टी के बढ़ने की गति को कम करके उतनी ही खूराक से उनके शरीर को अधिक जल्दी बढ़ाया जा सके और उन्हें अधिक मोटा-ताज़ा बनाया जा सके। किन्तु साथ ही इस बात की जांच भी अत्यन्त आवश्यक थी कि उस सूअर के मांस को जब पकाया जाए तो उसमें वह रसायन तो विद्यमान नहीं है जिससे उसे खाने वालों के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव पड़े। भुने हुए चूजे अथवा फेंटे हुए अंडे में तो वह विद्यमान नहीं है? 'चिह्नित' अणुओं को प्रयुक्त करने से यह निश्चय हो गया कि उनके अन्दर वह रसायन विद्यमान नहीं था; इसलिये यह तय हो गया कि कृषक लोग अपने सूअरों और मुर्गियों के शरीर पुष्ट करने के लिये इस रसायन को बिना किसी ख़तरे के काम में ला सकते हैं।

गायों की थाइरॉएड गिल्टी की बढ़ोतरी की गति को कम करने के लिये कई बार एक विशेष रसायन को प्रयुक्त किया जाता है। इससे वे गायें शांत एवं सुस्त हो जाती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उनकी जो शक्ति सम्भवतः दूसरे कामों में खर्च हो जाती वह अधिक दूध तैयार करने में लग जाती है। इस रसायन का गायों पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस बात की जांच करने के लिये रेडियो-सक्रिय आयोडीन को

प्रयुक्त किया जाता है। गेइगर-मापक को गाय की गिल्टी के ऊपर उसी तरह रखा जा सकता है जिस तरह मनुष्य की गिल्टी के ऊपर। इस यंत्र में उत्पन्न होने वाली ध्वनि गाय के शरीर के अन्दर होने वाली प्रतिक्रिया को ठीक-ठीक बतला देती है।

गायें अपनी खूराक के विभिन्न तत्त्वों को दूध बनाने के काम में किस तरह प्रयुक्त करती हैं—इस बात का ज्ञान कृषकों के लिये बहुत महत्त्व रखता है। गाय के शरीर में उसकी खूराक जिस प्रक्रम में से निकल कर दूध में परिवर्तित होती है वह अत्यन्त पेचीदा है। 'चिह्नित' अणुओं को प्रयुक्त करके इस प्रक्रम का पता लगाया जा सकता है, क्योंकि सिनेमा-कैमरे की भांति ये अणु खूराक के विशिष्ट तत्त्वों के मार्ग को प्रकट कर देते हैं। कृत्रिम गायों में रेडियो-सक्रिय पदार्थ प्रयुक्त करके उनकी सहायता से इस चित्र को पूरा किया जा रहा

है। रेडियो-सक्रिय फ़ास्फ़ोरस प्रयुक्त करके उसकी सहायता से यह अध्ययन किया जा रहा है कि मुर्गियों के शरीर पर पंख तथा भेड़ों पर ऊन किस तरह बनती है।

कृषकों के लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और लाभदायक ज्ञान की वृद्धि करने में आणविक ऊर्जा किस तरह सहायक हो रही है, इसके केवल कुछेक उदाहरण ही ऊपर दिये गए हैं। जिस बात से कृषक को लाभ पहुंचेगा उससे सारे संसार को लाभ होगा। जिन समस्याओं का समाधान शायद वर्षों में हो पाता उनका समाधान आणविक ऊर्जा की सहायता से कुछ ही महीनों, बल्कि कुछ ही सप्ताहों, में हो रहा है। यही नहीं, वरन् कुछ समस्याएं तो आणविक ऊर्जा की सहायता के बिना शायद सदा समस्याएं ही बनी रहतीं। उनका शायद कभी भी समाधान नहीं हो पाता।

क्या खाद्य-पदार्थों पर रेडियो-सक्रियता को अहानिकर मात्रा में डालकर उन्हें दीर्घ-काल तक ताज़ा रखा जा सकता है? ब्रुकहेवन राष्ट्रीय प्रयोगशाला में दिसम्बर, सन् १९५२ में कुछ आलुओं पर आणविक रेडियेशन डाला गया। दो वर्ष बाद ये आलू बिल्कुल ठीक हालत में मिले। दूसरे आलू, जो उसी समय साधारण स्थिति में एक गोदाम में रख दिये गए थे, बिल्कुल खराब हो गए। मिशिगन विश्व-विद्यालय में प्याज़ पर यही परीक्षण किया गया जिसका यही परिणाम निकला। खाने में दोनों वस्तुओं का ठीक स्वाद था।

मांस की सुगन्ध रेडियेशन की अधिक मात्रा से काफी नष्ट हो जाती है, किन्तु डब्बों में बन्द करने से सुगन्ध जितनी नष्ट

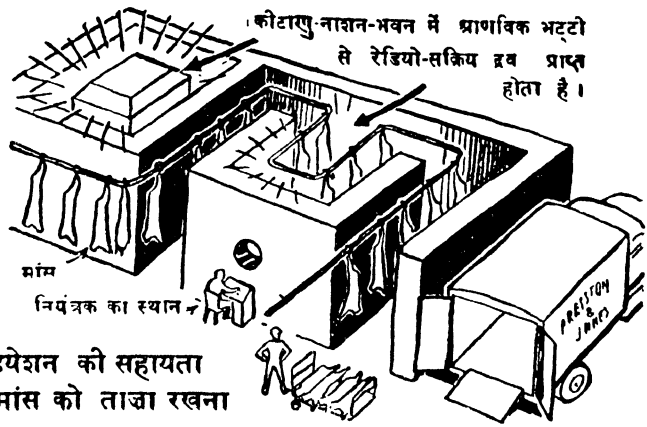

रेडियेशन की सहायता
से मांस को ताज़ा रखना

होती है उसकी अपेक्षा रेडियेशन से वह कम नष्ट होती है। फिर भी इस त्रुटि को दूर करने के लिये मांस को 'कीटाणु-रहित' करने की एक विधि का आविष्कार किया गया है। इससे उपरोक्त समस्या के हल की काफी आशा हो गई है। इस विधि की कृपा से ताज़ा मांस जो दुकान में ४ दिन तक ठहर सकता था अब दो सप्ताहों तक ताज़ा रह सकता है।

अमरीकी सेना की क्वाटंर-मास्टर-कोर की ओर से खाद्य-पदार्थों को कीटाणु-रहित करने की समस्या के अध्ययन के लिये एक पंच-वर्षीय योजना बनाई गई है जिस पर करोड़ों रुपये खर्च किये जाएंगे। यदि खाद्य-पदार्थों को रेडियेशन की सहायता से उसी तरह ताज़ा और खाने-योग्य बनाए रखा जा सके जिस तरह उन्हें जमाकर और डब्बों में बन्द करके रखा जाता है तो सैनिकों तथा नागरिकों को बहुत लाभ हो सकता है।

यह भी आशा की जा रही है कि भविष्य में सम्भवतः औषधियों को भी रेडियेशन द्वारा कीटाणु-रहित किया जासकेगा। औषधियों के सम्बन्ध में आणविक ऊर्जा एक और काम में भी लाई जा रही है। आणविक पौध-घर में कुछ ऐसे पौधों को, जिनमें से औषधियां निकाली जाती हैं, उगाकर रेडियो-सक्रिय औषधियां तैयार की जा रही हैं। उदाहरण के तौर पर हृदय-रोगों में काम आने वाली एक महत्त्वपूर्ण औषधि, डिजिटॉक्सीन (Digitoxin) फॉक्स-ग्लव (Foxglove) नाम के लाल रंग के एक विशेष पौधे में से बनाई जाती है। इस जाति के पौधों को शीशे के बने हुए एक ऐसे एयरकंडीशंड पौध-घर में, जो मज़बूती के साथ पूरी तरह बन्द होता है, उगाया जाता है जिसमें रेडियो-सक्रिय-कार्बन-मिश्रित कार्बन-डाइऑक्साइड गैस भरी हुई होती है। पौधे इस रेडियो-सक्रिय कार्बन-डाइऑक्साइड को उसी तरह चूस लेते हैं जिस तरह वे हवा में से साधारण कार्बन-डाइऑक्साइड को चूसते हैं। रेडियो-सक्रिय अणु पौधों के विभिन्न अंगों में प्रविष्ट हो जाते हैं। जब उन पौधों में से डिजिटॉक्सीन निकालकर शुद्ध की जाती है तो उसमें भी रेडियो-सक्रिय अणु मिलते हैं।

फिर इस रेडियो-सक्रिय डिजिटॉक्सीन की मानव-शरीर में जांच-पड़ताल की जाती है ताकि यह पता लगाया जाए कि औषधि कितने समय तक शरीर में रहती है। शिकागो विश्व-विद्यालय में डाक्टर ई० एम० गेइलिंग की देख-रेख में जो परीक्षण हुए उनसे प्रकट हुआ कि औषधि शरीर में ४० से लगाकर ७० दिन तक रहती है। यह अवधि डाक्टरों के

अनुमान से कहीं अधिक लम्बी रही। इस प्रकार के ज्ञान से डाक्टरों को यह तय करने में बड़ी सुविधा होती है कि प्रत्येक हृदय-रोगी के लिये औषधि की कितनी मात्रा ठीक रहेगी।

कई अन्य पौधे, जिन से अफ़ीम, बैलाडोला, निकोटीन और मारीजुआना आदि औषधियां प्राप्त होती हैं, शीशे के आणविक पौध-घरों में उगाए जा रहे हैं ताकि उनसे प्राप्त होने वाली औषधियों के सम्बन्ध में अधिक जानकारी प्राप्त हो सके।

आणविक पौध-घरों के अन्दर के जलवायु को बड़ी सावधानी से नियंत्रित रखा जाता है। कई वैज्ञानिक उस दिन का स्वप्न देख रहे हैं जब आणविक ऊर्जा से संसार भर का जलवायु नियंत्रित किया जा सकेगा। वे आशा करते हैं कि एक दिन आणविक ऊर्जा इतनी सस्ती बनने लगेगी कि उसकी सहायता से जब, जहां, और जितनी आवश्यकता होगी, वर्षा की जा सकेगी। वे कहते हैं कि तट के निकट वाली समुद्री लहरों को गरम किया जा सकेगा और इस तरह विशाल भू-खंडों की जलवायु को प्रभावित किया जा सकेगा। किन्तु इस प्रकार के जलवायु-नियंत्रण की हम निकट भविष्य में आशा नहीं कर सकते। और यह भी हो सकता है कि इस प्रकार का विचार सदा स्वप्न ही बना रहे।

अणु-बमों के परीक्षणों में जो ऊर्जा मुक्त होती है उस को ऋतु-अनुसंधान-शालाएं अपने अध्ययन के लिए काम में ला रही हैं। इन अध्ययनों की सहायता से ऋतु-शास्त्री मौसम के सम्बन्ध में अधिक ठीक भविष्यवाणी कर सकेंगे। किन्तु

आणविक बमों के परीक्षण असाधारण मौसम, वर्षा या हिमपात उत्पन्न नहीं करते। आज के जलवायु पर उनका कोई प्रभाव नहीं है।

एक और तरह भी शायद अणु-ऊर्जा कृषकों के लिए सहायक हो सके, अर्थात् शायद आणविक उष्मा का बागों के लिए लाभ उठाया जा सके। अणु से उत्पन्न सस्ती उष्मा शायद किसी दिन सन्तरों, निम्बुओं तथा अन्य फलों को असामयिक पाले से बचाने के लिए प्रयुक्त की जा सके। आजकल ठंडे देशों में यह काम बड़े-बड़े बर्तनों में आग जलाकर उससे लिया जाता है।

भविष्य में सम्भवतः अणु-ऊर्जा कृषकों को और भी कई तरह से लाभ पहुंचाएगी। किन्तु अभी यह नहीं कहा जा सकता कि उन्हें ये लाभ कब और किस रूप में प्राप्त होंगे।

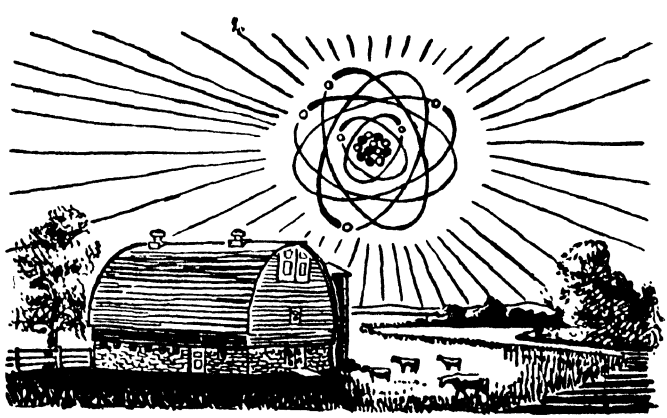

: ६ :

अणु के विविध उपयोग

घास के एक गट्ठे में एक सूई पड़ गई है और आप उसे ढूंढ़ना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में यदि सूई के लोहे में रेडियो-सक्रिय अणु मिले हुए हैं, तो गेइगर-मापक यंत्र की सहायता से आप आसानी से उसे ढूंढ़ सकते हैं।

रेडियो-सक्रिय अणु आश्चर्यजनक कार्य कर सकते हैं। अब वे धीरे-धीरे अनेकों उद्योगों में काम में लाए जाने लगे हैं। किन्तु अभी इस क्षेत्र में उन्होंने पदार्पण ही किया है।

हर साल आणविक राख खरीदने वाले औद्योगिक संस्थानों की संख्या बढ़ रही है, क्योंकि आणविक भट्टियों में निर्मित

होने वाले रेडियो-सक्रिय अणुओं के नित्यप्रति नए-नए उपयोग निकाले जा रहे हैं। 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' आणविक राख उपलब्ध करने तथा विभिन्न तत्त्वों को आणविक भट्टियों में 'पकाकर' रेडियो-सक्रिय अणु तैयार करने के अतिरिक्त उद्योगों के साथ इस रूप में भी सहयोग करता है कि वह उनके लिये आवश्यकतानुसार नए पदार्थों का भी निर्माण करता है। उदाहरण के तौर पर आप अपने कारखाने में बनाए हुए पिस्टन-रिंग को किसी आणविक भट्टी में भेज सकते हैं ताकि उन पर न्यूट्रोनों से 'प्रहार' कराया जा सके। फिर आप उन्हें किसी परीक्षण-इंजन में लगाकर यह मालूम कर सकते हैं कि इंजन की कितनी घिसाई होती है।

इंजनों की पड़ताल करने की पुरानी विधि में एक विशेष प्रकार का तेल प्रयुक्त किया जाता है। विधि यह है कि पहले इंजन के सारे पुर्ज़ों को तोल लिया जाता है, फिर उन्हें तेल में भिगोकर, इंजन को जोड़कर, उसे कई घंटे तक चलाया जाता है और उसके बाद इंजन को खोलकर पुर्ज़ों को साफ करके उन्हें दोबारा तोल लिया जाता है। दोनों वज़नों का अन्तर इंजन की घिसाई को प्रकट करता है।

इंजनों की घिसाई की नई विधि में रेडियो-सक्रिय पिस्टन-रिंगों का प्रयोग किया जाता है। यह विधि अधिक सरल है और अपेक्षाकृत कम समय लेती है। इस विधि में इंजन को कुछ देर तक चलाने के बाद तेल निकाल दिया जाता है। धातु के अति-सूक्ष्मकण, जो इंजन की घिसाई के कारण रिंगों पर से टूट गए थे, अब इस तेल में मौजूद हैं।

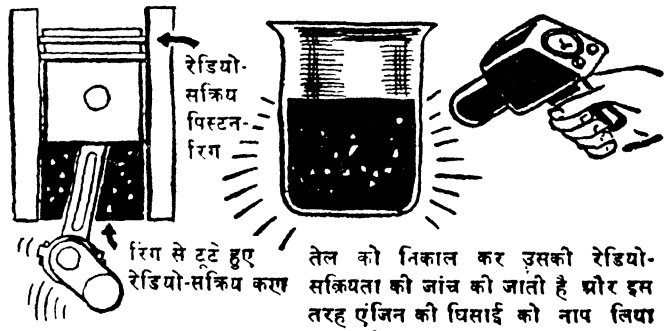

तेल को निकाल कर उसकी रेडियो-सक्रियता की जांच की जाती है और इस तरह एंजिन की घिसाई को नाप लिया जाता है।

चूंकि ये कण रेडियो-सक्रिय हैं, इसलिये इनकी मात्रा को सरलतापूर्वक नापा जा सकता है।

स्टैंडर्ड ऑइल कम्पनी ऑफ़ कैलिफ़ोर्निया ने ४ वर्ष तक ३५००० डालर खर्च करके नई विधि से पिस्टन पर परीक्षण किये। उनका अनुमान है कि पुरानी विधि से यदि इतने ही परीक्षण किये जाते तो उन पर १० लाख डालर खर्च होते और ६० वर्ष का समय लगता।

टायरों की घिसाई का अनुमान लगाने में भी निर्माताओं को रेडियो-सक्रिय अथवा संकेतक अणुओं से बड़ी सहायता मिल रही। बी० एफ० गुडरिच कम्पनी ने इस काम के लिये रेडियो-सक्रिय फ़ास्फ़ोरस को टायरों में लगा दिया। घिसाई का अनुमान लगाने के लिये टायरों की दो तरह से परीक्षा की जाती है। एक तरह की परीक्षा में तो गेइगर-मापी यंत्र से काम लिया जाता है। किन्तु इससे भी अधिक अच्छी परीक्षा इस तरह की जाती है कि उस सड़क पर, जिस पर से टायर चला हो, एक संवेदनशील फ़िल्म को खोल दिया जाता

है। टायर के मार्ग को चाक की दो लाइनों से चिह्नित कर दिया जाता है और दोनों लाइनों के बीच में फ़िल्म को कई घंटों तक खुला रहने दिया जाता है। टायर के घिसने से रबड़ के जो अत्यन्त सूक्ष्म कण झड़ जाते हैं वे फ़िल्म पर अपना चित्र बना देते हैं। इस तरह घिसकर झड़ी हुई रबड़ की मात्रा एक पौंड के १०-लाखवें भाग से भी कम हो तो भी उसका ठीक-ठीक नाप-तोल हो जाता है।

इसी तरह विविध मशीनों के अनेकों पुर्जों की घिसाई का नाप-तोल लेने के लिये भी रेडियो-आइसोटोपों की सहायता ली जाती है। इससे रुपया और समय दोनों की बचत होती है, और आंकड़े अधिक ठीक निकलते हैं, क्योंकि 'चिह्नित' अणुओं की सूक्ष्म-सी मात्रा का भी ठीक-ठीक नाप-तोल हो सकता है।

रबड़, काग़ज़, प्लास्टिक, पतली धातु, वर्क़ तथा कपड़ों आदि की मोटाई भी रेडियो-आइसोटोपों से नापी जाने लगी है। प्लायोफ़िल्म जैसे एक पदार्थ का उदाहरण लीजिये। जब इस पदार्थ का निर्माण होता है उस समय यह दो रौलरों के बीच में से गुज़रता है जो इसकी मोटाई पर नियंत्रण रखते हैं। अब इस मोटाई की जांच-पड़ताल रखने के लिये इसके एक ओर रेडियो-आइसोटोप लगा दिये जाते हैं और दूसरी ओर उनकी रेडियो-सक्रियता को नापने के लिये एक यंत्र। मापक-यंत्र और रेडियो-आइसोटोप—दोनों ही—प्लायोफ़िल्म को नहीं छूते। किन्तु रौलरों के बीच में से निकलते हुए प्लायोफ़िल्म की मोटाई में यदि सूक्ष्म-सा भी अन्तर पड़ जाता

मापकों में रेडियेशन प्रकट हो जाता है, फिर वह मोटर में आ जाता है और मोटर रौलरों को ठीक स्थान पर कर देता है

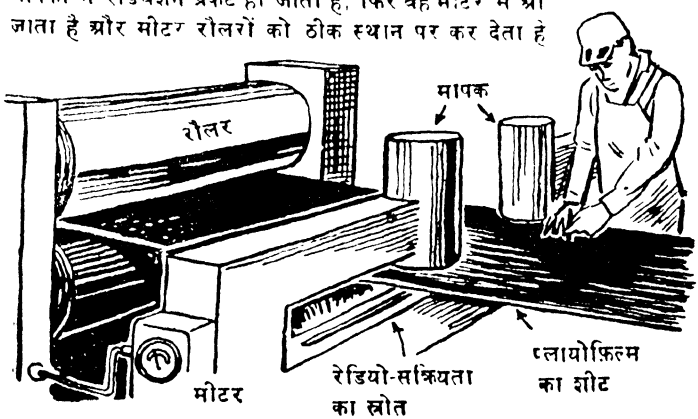

है तो प्लायोफ़िल्म के आर-पार निकलने वाली रेडियो-सक्रियता की मात्रा कम हो जाती है और इस बात का पता तुरन्त मापक-यंत्र पर लग जाता है। ऐसा होते ही रौलर अपने-आप ठीक स्थिति में आ जाते हैं और प्लायोफ़िल्म ठीक मोटाई में पुनः रौलरों के बीच में से निकलने लगता है।

इसी प्रकार के कुछ यंत्र ऐसे भी हैं जो मशीनों को इतना सही चला सकते हैं कि उनमें जिस पदार्थ का निर्माण हो रहा हो उसकी मोटाई में कहीं भी दो-हज़ारवें भाग से अधिक का अन्तर न पड़े। यदि इन यंत्रों की सहायता न ली जाए तो ऐसे पदार्थों का बहुत काफ़ी अंश उस मोटाई का बन जाए कि पदार्थ का वह अंश काम में ही न आ सके। इस तरह व्यर्थ जाने वाले अंशों का एक लम्बी अवधि तक का हिसाब लगाया जाए तो अनेकों उद्योगों में इन यंत्रों की सहायता से सामान की अब बहुत भारी बचत होने लगी है। एक कम्पनी ने,

जिसके यहां प्लास्टिक का सामान बनता है, अनुमान लगाया है कि प्लास्टिक के शीट बनते समय उसकी मोटाई की देख-भाल करने के लिये जब आणविक ऊर्जा से पहरेदार के तौर पर काम लिया जाता है तो उतने ही कच्चे सामान से उसे ५० प्रतिशत अधिक ठीक सामान प्राप्त होता है।

रेडियो-आइसोटोप पहरेदारी एवं निरीक्षण का काम और तरीकों से भी करते हैं। धातु के बने हुए विभिन्न मशीनों के पुर्जों के निर्माण में यदि कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो उसका पता तुरन्त कुछ रेडियो-आइसोटोपों द्वारा लग जाता है। बहुत समय से भारी धातुओं के निरीक्षण के लिये ऐक्स-रे और रेडियम प्रयुक्त होते रहे हैं। किरणें त्रुटिपूर्ण भागों अथवा छिद्रों में से ठोस एवं सम-रस भागों की अपेक्षा अधिक आसानी से निकल जाती हैं। वे उसी प्रकार त्रुटियों को प्रकट कर देती हैं जिस प्रकार ऐक्स-रे किरणें दाँतों की त्रुटियों को प्रकट कर देती हैं। अब विशेष प्रकार के रेडियो-आइसोटोपों को ऐक्स-रे तथा रेडियम के स्थान पर इस कार्य के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा है, क्योंकि उन पर खर्च बहुत कम आता है और उनका प्रयोग बहुत सुविधापूर्ण है।

कई वायुयानों के इंजनों में टूटे हुए पुर्जों तथा बिजली के त्रुटिपूर्ण जोड़ों का पता लगाने के लिये रेडियो-आइसोटोपों को निरीक्षक-यंत्र के रूप में काम में लाया जाता है। इन वायुयानों के इंजनों में कई स्थान ऐसे होते हैं कि वहां तक हाथ सरलतापूर्वक नहीं पहुंच सकते। किन्तु सीसियम-१३७ (Cesium) जैसे आइसोटोप ऐसे स्थानों का सरलतापूर्वक

निरीक्षण कर सकते हैं। सीसियम-१३७ आणविक भट्टियों की राख में से निकलने वाले पदार्थों में से एक है। इस महत्त्वपूर्ण कार्य को सम्पन्न करने के लिये आणविक राख ही काम में आ जाती है।

रेडियो-सक्रिय 'पहरेदार' मशीन-चालकों की भी रक्षा करते हैं। उदाहरण के तौर पर, पंच-प्रेस के चालक के हाथों की रक्षा कलाई की रेडियो-सक्रिय पट्टी करती है। यदि वह ठीक समय पर अपना हाथ पंच के नीचे से न निकाल सके तो रेडियेशन की सहायता से मशीन को स्वतः बन्द किया जा सकता है।

कई औद्योगिक पदार्थ निर्माण के बाद मशीनों द्वारा बंडलों में बंधकर बांधने वाली मशीन में से निकलते रहते हैं। उन बंडलों का निरीक्षण भी रेडियो-आइसोटोपों द्वारा किया जाता है। यदि कोई डब्बा या बंडल ठीक तरह से नहीं भरा गया है या बांधा गया है तो डब्बे या बंडल के एक ओर से रेडियो-आइसोटोप की अधिक किरणें निकलकर उसके दूसरी ओर मापक-यंत्र पर पड़ जाती हैं। उसमें या तो चेतावनी-प्रकाश अधिक तीव्र चमक उठता है, या फिर मशीन में यह प्रबन्ध रहता है कि वह त्रुटिपूर्ण डब्बे या बंडल को अपने-आप बाहर फेंक देती है।

ढलाई की भट्टी में पिघले हुए धातु की मोटाई या गहराई को नापने के लिये भी रेडियो-सक्रिय अणु काम में आते हैं। पहाड़ों की चोटियों पर जमी हुई बर्फ में कितना पानी है—यह भी हम इन अणुओं की सहायता से मालूम कर सकते हैं।

पदार्थ चाहे कितना ही गर्म हो या कितना ही ठंडा हो, उसके अस्थिर अणु टूटते ही रहते हैं।

अब रेडियो-सक्रिय अणुओं की उपादेयता का एक और उदाहरण लीजिए। मान लीजिए कि आपके घर के निकट पृथ्वी के अन्दर नल कहीं टूट गया है और उसमें से पानी रिस रहा है। यदि आपको यह मालूम करना है कि नल किस जगह से टूटा है तो आपको सम्भवत: धरती कई जगहों पर खोदनी पड़ेगी, तब कहीं जाकर आपको नल का टूटा हुआ स्थान मिलेगा। किन्तु टूटे हुए स्थान को ढूँढ़ने का अधिक आसान और अच्छा उपाय यह है कि आप इस काम के लिए अणुओं से सहायता लें। उस नल में से जो पानी गुज़र रहा है उसमें आप रेडियो-सक्रिय अणु मिला दें। टूटे हुए स्थान पर से ये अणु पानी के साथ-साथ बाहर निकलेंगे। अब आप पानी के मार्ग का पीछा किसी ऐसे यंत्र की सहायता से कर सकते हैं जो रेडियो-सक्रियता का पता लगा लेता हो। जिस स्थान पर पहुंच कर यंत्र में ध्वनि तीव्र हो उठे, समझ लीजिए कि नल वहीं से टूटा है और आप धरती को उस स्थान पर खोदकर निश्चित रूप से टूटे हुए टुकड़े पर पहुंच सकते हैं।

बहुत-सी जगहों पर भूमि-गत नलों में से पानी के स्थान पर अन्य कई प्रकार के द्रव ले जाए जाते हैं जैसे, डीज़ल-तेल, गैसोलीन आदि। ये द्रव कई बार एक-दूसरे के पीछे-पीछे उन नलों में बहा कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाए जाते हैं। यह संकेत देने के लिए कि कब एक द्रव समाप्त और दूसरा प्रारम्भ हो गया है 'चिह्नित' अणु संकेतक का काम दे

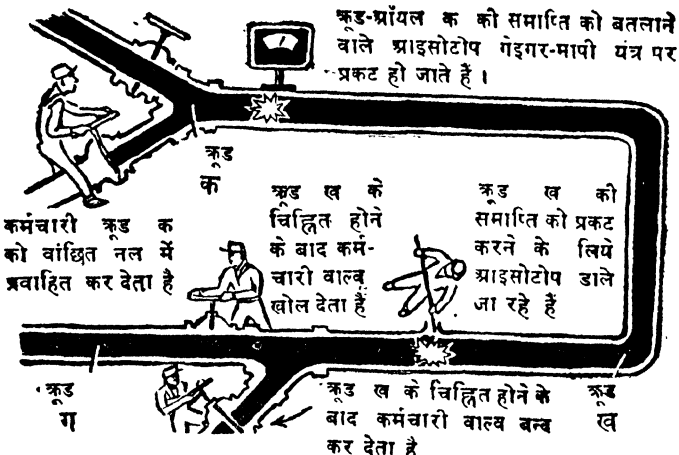

एक ही नल में तीन तेलों का प्रवाह

सकते हैं। मान लीजिए कि किसी नल में गैसोलीन बह रहा है। उसके पीछे-पीछे उसी नल में मिट्टी का तेल आ रहा है और उसके बाद डीज़ल-तेल। प्रत्येक द्रव जब समाप्त होता है तो उसकी समाप्ति और अगले द्रव के प्रारम्भ होने की घोषणा रेडियो-सक्रिय अणु कर देते हैं। उनके बिना दो द्रवों को अलग-अलग करने के प्रयत्न में दोनों द्रवों की बहुत-सी मात्रा आपस में गडमड हो जाती है और काफ़ी पदार्थ बेकार चला जाता है।

पैट्रोलियम-उद्योग रेडियो-आइसोटोपों से कई और काम भी लेता है। आइसोटोप द्रवों के प्रवाह की गति तथा उनकी गहराई को नाप सकते हैं। नलों में बहते हुए तेल को नापकर, यदि मांग अधिक हो तो, अधिक पम्प चलाकर नलों में तेल की सप्लाई बढ़ाई जा सकती है; मांग कम होने पर कुछ पम्प

बन्द करके सप्लाई कम की जा सकती है। कई बार तेल के नलों के अन्दर छोटे-मोटे औज़ार फंसे रह जाते हैं। जादूई आंख की तरह आइसोटोप पता लगा देते हैं कि वे औज़ार कहां फंसे हुए हैं। इसी तरह आइसोटोप जादूई आंख वाले और भी कई काम करते हैं।

उदाहरण के तौर पर साबुनों की परीक्षा में आइसोटोपों से जादूई आंख का काम लिया जाता है। इन परीक्षाओं में कीटाणुओं को रेडियो-सक्रिय कर दिया जाता है। आप इन कीटाणुओं को आंख से नहीं देख सकते, क्योंकि ये बहुत ही छोटे होते हैं। इन्हें केवल सूक्ष्म-दर्शी यंत्र की सहायता से ही देखा जा सकता है। किन्तु यदि कीटाणुओं को रेडियो-आइसोटोप खिला दिए जाएं तो वे रेडियो-सक्रिय हो जाते हैं और गेइगर-मापी यंत्र से उनको सरलता-पूर्वक नापा जा सकता है। यह परीक्षा करने के लिए कि विभिन्न साबुनों तथा धोने वाले अन्य पदार्थों में कपड़ों को धोने की कितनी क्षमता एवं शक्ति है, रेडियो-सक्रिय कीटाणुओं को कपड़ों पर डाल दिया जाता है और प्रत्येक कपड़े को भिन्न साबुन से धोया जाता है। प्रत्येक कपड़े पर जितने कीटाणु बच जाते हैं उनका हिसाब लगाकर पता लगा लिया जाता है कि किस साबुन में कपड़े धोने की कितनी क्षमता थी।

रेडियो-आइसोटोपों की सहायता से वैज्ञानिक भूमि के अन्दर स्थित पानी का निरीक्षण कर सकते हैं, उसकी आयु का अनुमान लगा सकते हैं, तथा वर्षा के बाद उसका कितना पानी धरती में गया है इसका भी अनुमान लगा सकते हैं।

यदि किसी स्थान पर कोई निर्माण-कार्य बनने की योजना हो तो कोबॉल्ट-६० प्रयुक्त करके उस स्थान पर धरती की मिट्टी की विभिन्न तहों की जांच की जा सकती है। इस नई विधि में मिट्टी के नमूनों को, पहले की भांति, किसी प्रयोगशाला में ले जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

नहरों में कई प्रकार की घास उग आती है और वह पानी के खुले बहाव को रोकती है। ऐसी घास को नष्ट करने के लिए एक रसायन तैयार किया गया है। इसके प्रभाव की जांच करने के लिए अमरीका का भूमि-सुधार विभाग रेडियो-आइसोटोपों का प्रयोग कर रहा है। घास-नाशक दवा में रेडियो-सक्रिय कार्बन मिलाकर वैज्ञानिक लोग पौधों में दवा की प्रगति का अवलोकन कर सके। इस तरह उन्हें जो ज्ञान प्राप्त हुआ उसकी सहायता से घास-नाशक दवा के प्रयोग के अधिक उत्तम उपाय निकाल लिये गए।

रोगन तथा फ़र्शी मोम की घिसाई का अनुमान लगाने के लिए भी रेडियो-सक्रिय अणुओं की सहायता से परीक्षण किए गए हैं। रक्त-द्रव को कीटाणु-रहित करने के लिए, तथा इस बात की जांच करने के लिए कि अमुक कोल्ड-क्रीम त्वचा में कितनी अवशोषित होती है, तथा अन्य अनेकों प्रकार की परीक्षाओं के लिए भी, रेडियो-आइसोटोपों से सहायता ली जा रही है।

कई नदियों के किनारे कारखाने बने हुए होते हैं जिन में से निकले हुए कूड़े-कचरे तथा फ़ालतू एवं व्यर्थ रसायन और द्रव नदी में बहा दिए जाते हैं। जो मछुवे उन नदियों में से

मछली पकड़ते हैं उन्हें यह पता नहीं लग सकता कि उन द्रवों एवं रसायनों में से कोई द्रव या रसायन मछलियों को दूषित तो नहीं बना रहा। जो रासायनिक कूड़ा-कचरा नदी में बहाया जाता है उसमें यदि सूक्ष्म-सी मात्रा में भी रेडियो-सक्रिय अणु मिला दिए जाएं तो उनका पता लगाया जा सकता है। यदि नदी के पानी के दस करोड़ भाग में केवल ५-७ भाग भी उन रसायनों के हों तो रेडियो-सक्रियता की परीक्षा से उनका पता लग सकता है।

अपराधियों को पकड़ने में भी रेडियो-आइसोटोपों से सहायता ली जा रही है। पुलिस तथा जासूस-विभाग कई बड़े-बड़े शहरों में अणुओं को संकेतकों के रूप में प्रयुक्त करने लगे हैं। कुछ जौहरी लोग मूल्यवान मणियों पर रेडियो-सक्रिय अणु लगा देते हैं ताकि चोरी होने पर उनको सरलता-पूर्वक पहचाना जा सके।

संकेतक अर्थात् रेडियो-सक्रिय अणु अब संसार-भर में मनुष्य के अनेकों काम कर रहे हैं। वे आल्प्स पहाड़ों के नीचे बहने वाले नालों के प्रवाह की जांच करते हैं। फ्रांस में अणुओं की सहायता से भूमिगत-टेलीफ़ोन-तारों की यह परीक्षा की जाती है कि उनके अन्दर कहीं हवा तो नहीं घुस रही। फ्रांस तथा उत्तरी अफ्रीका के बीच में जो तार समुद्र में बिछे हुए हैं उनका भी निरीक्षण रेडियो-आइसोटोपों से किया जाता है। रेडियो-सक्रिय अणुओं के शान्ति-कालीन उपयोगों के ये केवल थोड़े-से ही उदाहरण हैं।

मछली पकड़ते हैं उन्हें यह पता नहीं लग सकता कि उन द्रवों एवं रसायनों में से कोई द्रव या रसायन मछलियों को दूषित तो नहीं बना रहा। जो रासायनिक कूड़ा-कचरा नदी में बहाया जाता है उसमें यदि सूक्ष्म-सी मात्रा में भी रेडियो-सक्रिय अणु मिला दिए जाएं तो उनका पता लगाया जा सकता है। यदि नदी के पानी के दस करोड़ भाग में केवल ५-७ भाग भी उन रसायनों के हों तो रेडियो-सक्रियता की परीक्षा से उनका पता लग सकता है।

अपराधियों को पकड़ने में भी रेडियो-आइसोटोपों से सहायता ली जा रही है। पुलिस तथा जासूस-विभाग कई बड़े-बड़े शहरों में अणुओं को संकेतकों के रूप में प्रयुक्त करने लगे हैं। कुछ जौहरी लोग मूल्यवान मणियों पर रेडियो-सक्रिय अणु लगा देते हैं ताकि चोरी होने पर उनको सरलता-पूर्वक पहचाना जा सके।

संकेतक अर्थात् रेडियो-सक्रिय अणु अब संसार-भर में मनुष्य के अनेकों काम कर रहे हैं। वे आल्प्स पहाड़ों के नीचे बहने वाले नालों के प्रवाह की जांच करते हैं। फ्रांस में अणुओं की सहायता से भूमिगत-टेलीफ़ोन-तारों की यह परीक्षा की जाती है कि उनके अन्दर कहीं हवा तो नहीं घुस रही। फ्रांस तथा उत्तरी अफ्रीका के बीच में जो तार समुद्र में बिछे हुए हैं उनका भी निरीक्षण रेडियो-आइसोटोपों से किया जाता है। रेडियो-सक्रिय अणुओं के शान्ति-कालीन उपयोगों के ये केवल थोड़े-से ही उदाहरण हैं।

उद्योगों में रेडियो-आइसोटोप एक नया शक्तिशाली साधन प्रमाणित हो रहे हैं। आशा की जाती है कि उनके अनेकों नए उपयोग भविष्य में ज्ञात होंगे, किन्तु आजकल भी विभिन्न उद्योग 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' द्वारा तैयार किये गए रेडियो-आइसोटोपों के सब से बड़े ग्राहक हैं। शायद ही कोई ऐसा उद्योग हो जिसमें कई समस्याओं का अधिक ठीक और सरल हल ढूंढ़ने में रेडियो-सक्रिय अणुओं की सहायता न ली जाती हो।

ऐसे नए-नए कारखाने अधिकाधिक संख्या में नित्यप्रति खुलते जा रहे हैं जो रेडियो-आइसोटोप तैयार करने तथा उनके प्रयोग के लिये अनेकों प्रकार के यंत्रों का निर्माण करने का कार्य करते हैं। 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन' से अपनी योजना स्वीकृत कराके अमरीका के विश्व-विद्यालय तथा औद्योगिक अनुसंधान-शालाएं कई प्रकार की छोटी-छोटी आणविक भट्टियां खरीद सकती हैं।

कुछ वैज्ञानिकों का ख्याल है कि आने वाले दस-बीस वर्षों में रेडियो-आइसोटोप अनेकों महत्त्वपूर्ण परिवर्तन ला देंगे। हो सकता है कि ये परिवर्तन धीरे-धीरे आएं। इसके अतिरिक्त रेडियो-सक्रिय अणुओं के अधिकाधिक प्रयोग के साथ यह समस्या अधिक विशाल रूप में हमारे सामने आती रहेगी कि रेडियेशन से काम लेने वाले लोगों को उससे होने वाली हानि से कैसे बचाया जाए। किन्तु यह बात निश्चित है कि उद्योगों में आणविक ऊर्जा नित्यप्रति अधिकाधिक भाग ले रही है।

प्रतिदिन हज़ारों आइसोटोप आपके लिये कारखानों में काम कर रहे हैं और उनसे निकलने वाला रेडियेशन आपके लिये अनेक प्रकार की वस्तुएं अधिक अच्छी और सस्ती तैयार कर रहा है। और औद्योगिक क्षेत्र में उसकी सेवा अभी तो प्रारम्भ ही हुई है।

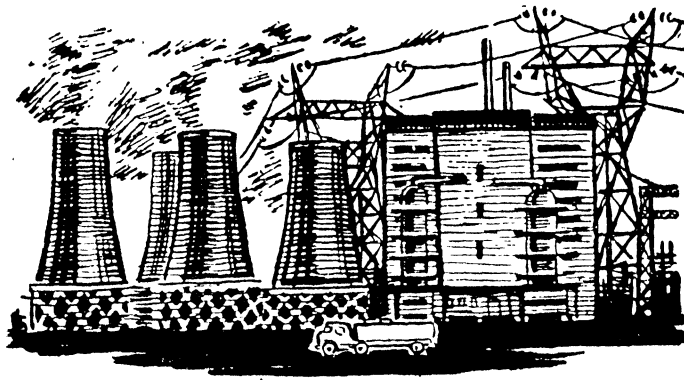

: १० :

अणुओं से बिजली का उत्पादन

सम्भव है आप किसी दिन किसी आणविक बिजली-घर में काम करें जो किसी पूरे विशाल नगर को बिजली सप्लाई करता हो। उन बिजली-घरों में, जिन में कोयले या जल-प्रपात से बिजली पैदा की जाती है, कर्मचारियों को खतरे से बचाने के लिए कई उपाय काम में लाए जाते हैं। किन्तु आणविक बिजली-घरों में कर्मचारियों के बचाव के लिये विशेष प्रकार की सावधानियां बरती जाएंगी। फ़िल्मों वाले बिल्ले, रक्षात्मक कपड़े, ऐसे यांत्रिक हाथ जिनसे दूरस्थ नियंत्रकों की सहायता से काम लिया जा सकता है, तथा रेडियो-सक्रियता से सम्बन्धित सारे उपादान ऐसे बिजली-घर में मौजूद होंगे। यदि आपके

जिम्मे निस्तब्ध आणविक भट्टी की तीव्रता को नियन्त्रित करने का काम होगा तो आप एक ऐसे तख्ते के सामने बैठेंगे जिसमें अनेकों यन्त्र और रोशनियां उसी ढंग से लगी हुई होंगी जैसे कि अन्य आणविक भट्टियों में लगी हुई होती हैं।

शायद आप सोचते होंगे कि क्या आणविक बिजली-घर का आणविक बम की भांति विस्फोट तो नहीं हो जाता। आप यदि आणविक बिजली-घर में काम करते हों या उसके निकट रहते हों तो आपको डरने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि यदि भट्टी में कुछ गड़बड़ हो जाए तो तख्ते में तुरंत 'चेतावनी-प्रकाश' हो जाएगा और वहां बैठा हुआ कर्मचारी एक बटन दबा देगा, जिस पर 'निरोध-नियंत्रक' लिखा हुआ होता है। इस बटन के दबते ही 'नियंत्रक डंडे' भट्टी के अन्दर पड़ जाएंगे—वही डंडे जो न्यूट्रोनों का अवशोषण कर लेते हैं—

और भट्टी के विस्फोट-दशा तक पहुँचने से बहुत पहले भट्टी ठप्प हो जाएगी।

आणविक बिजली को संकट-विहीन बनाने के लिए जो सावधानियां बरती जाएंगी वे उतनी ही अधिक और व्यापक होंगी जितनी अन्य आणविक उत्पादन-उद्योगों में बरती जाती हैं। आज आणविक-ऊर्जा का उत्पादन करने वाले कारखानों में काम करने वाले कर्मचारियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा का स्तर किसी भी अन्य उद्योग के कर्मचारियों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के स्तर से अधिक अच्छा, ऊंचा एवं सन्तोषजनक है।

आणविक बिजली-घर में—चाहे वह कितना भी बड़ा या छोटा हो—बिजली पैदा करने की विधि लगभग वही होगी जो साधारण बिजली-घरों में प्रयुक्त की जाती है। अंतर एक तो आणविक भट्टी का होगा और दूसरा उसके कणों तथा कूड़े-कचरे को ठिकाने लगाने एवं उससे छुटकारा पाने की विधि का। आणविक बिजली-घर में आणविक ईंधन से उष्मा उत्पन्न की जाएगी जो पानी को भाप में परिणत करेगी। इस भाप पर दबाव डाला जाएगा, वह 'स्टीम-टर्बाइन' के पंखों को चला देगी। टर्बाइन एक जनित्र (जैनरेटर—Generator) को चालू करेगा, और जनित्र में बिजली उत्पन्न होगी। यह बिजली तारों द्वारा घरों और कारखानों में पहुंचकर मनुष्य के अनेकों काम करेगी। बिजली की इस उत्पादन-विधि में भाप उसी तरह काम करेगी जिस तरह वह सैंकड़ों वर्षों से करती आ रही है।

कुछ लोग यह स्वप्न देख रहे हैं कि आणविक बिजली-घर

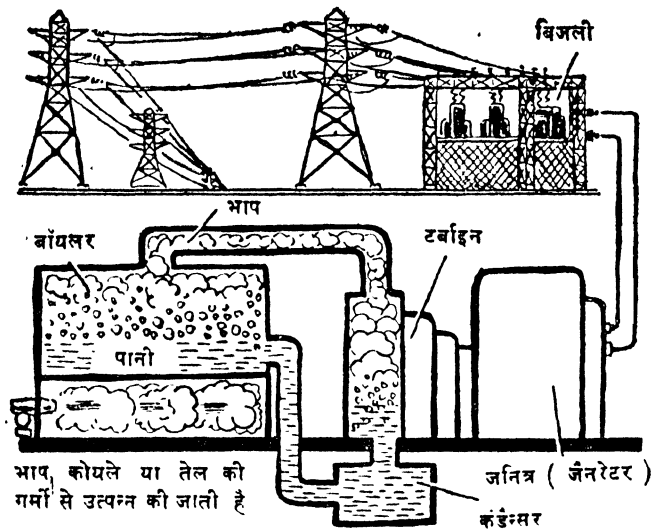

प्राचीन विधि से बिजली का उत्पादन

निकट भविष्य में ही बनकर सस्ती बिजली उपलब्ध कर देंगे। वे उन समस्याओं पर विचार नहीं करते जिनका हल करना हमारे उद्देश्य को मूर्त रूप देने से पहले अनिवार्य है। ये समस्याएं हैं—रेडियो-सक्रियता तथा आणविक भट्टियों में उत्पन्न होने वाली अत्यन्त तीव्र उष्मा। इन भट्टियों के निर्माण पर करोड़ों-करोंड़ों रुपये खर्च होंगे; उनके निर्माण में वह विशेष सामग्री प्रयुक्त की जाएगी जो अत्यन्त तीव्र उष्मा को सहन करने की क्षमता रखती होगी। फिर उष्मा को रेडियो-सक्रिय पदार्थों से उन पदार्थों में संचारित करना होगा जो रेडियो-सक्रिय नहीं होंगे।

सैंकड़ों तरह की आणविक भट्टियों के डिज़ाइन बनाए

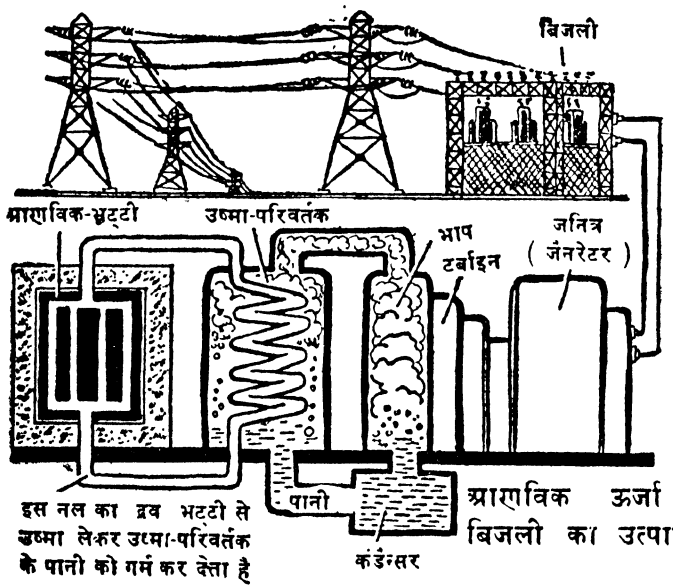

आणविक ऊर्जा से बिजली का उत्पादन

गए हैं, किन्तु सभी डिज़ाइनों में भट्टियों को ठंडा करना अत्यन्त आवश्यक है। अत्यन्त तीव्र तापों को उनके उत्पत्ति-स्थान के केन्द्र में ही शान्त करना होगा। भट्टी को ठंडा करने वाला पदार्थ 'कूलाण्ट' (Coolant) कहलाता है। वह उष्मा को उष्मा-परिवर्तक (Heat Exchanger) में ले जाता है जहां जाकर वह अपनी कुछ उष्मा पानी या किसी अन्य पदार्थ को दे देता है। यहां गर्म पदार्थ रेडियो-सक्रिय नहीं रहता। 'भारी' पानी, विशेष प्रकार की गैसें, पिघली हुई धातुएं, साधारण पानी अथवा अन्य कई प्रकार के पदार्थ 'कूलाण्ट' का काम दे सकते हैं।

एक बड़े डिज़ाइन वाले आणविक बिजली-घर के लिए

यह योजना बनाई गई है कि तरल सोडियम उसकी भट्टी के केन्द्र की उष्मा को दूर करने के लिए प्रयुक्त किया जाए। किन्तु तरल सोडियम को प्रयुक्त करना कोई आसान काम नहीं है। जब वह वायु के सम्पर्क में आता है तो उसमें लपटें उठने लगती हैं। जब वह पानी के सम्पर्क में आता है तो उसमें बड़ा भयंकर विस्फोट हो उठता है। और जब वह आणविक भट्टी में से बाहर निकलता है तो वह रेडियो-सक्रिय हो चुका होता है। उन अनेकों समस्याओं में से हमने ऊपर केवल कुछ ही समस्याएं दी हैं जिनका सामना आणविक-शक्ति-योजनाओं पर काम करने वाले एंजीनियरों को करना पड़ रहा है।

जहां एक ओर कुछ लोग निकट भविष्य में ही सस्ती आणविक-बिजली का स्वप्न देख रहे हैं, वहां, दूसरी ओर, वे लोग भी हैं जो अणुओं से बिजली उत्पन्न होने की बात को हास्यास्पद समझते हैं। वास्तव में विदीर्ण होते हुए अणुओं से उत्पन्न होने वाली उष्मा को काम में लाकर सन् १९५१ में इडाहो में बिजली पैदा की गई थी। उस समय इतनी करैण्ट पैदा की गई थी कि वह आणविक भट्टी के भवन को प्रकाशमान करने तथा उसकी मशीनों को चलाने के लिए पर्याप्त थी।

राष्ट्रपति आइज़नहावर ने अमरीका में ६ सितम्बर, सन् १९५४ को इस प्रकार का प्रथम आणविक बिजली-घर बनवाना शुरू किया था, जिसका व्यापारिक और व्यावहारिक पहलू ठोस था। कोलोरेडो राज्य के डेन्वर नामक स्थान पर राष्ट्रपति ने इधर एक 'जादूई डंडे' से एक सिलिंडर को छूआ

जिसके नीचे बिजली के यंत्र थे, और उधर, उसी क्षण, २००० मील परे, पैन्सिल्वेनिया राज्य के शिपिंग-पोर्ट नामक नगर के उस स्थान पर, जहां आणविक बिजली-घर का निर्माण होना था, बिजली के एक फावड़े ने नींव खोदनी शुरू कर दी। इस स्थान पर 'वैस्टिंगहाउस इलैक्ट्रिक कम्पनी' एक आणविक भट्टी का निर्माण कर रही है, जिसे, बाद में, 'डूक्वेस्ने लाइट कम्पनी' अपने प्रबन्ध में चलाएगी। इस बिजली-घर में उत्पादित बिजली से एक छोटे नगर की बिजली-सम्बन्धी आवश्यकताएं पूरी हो सकेंगी। बिजली-घर को चलाने के लिए हर महीने केवल १५ पौंड यूरेनियम ईंधन के रूप में लगेगा। पुरानी विधि से इतनी बिजली पैदा करने के लिए ४०,००० पौंड कोयला लगता।

यदि आणविक भट्टी बनाने के खर्च को ध्यान में रखा जाए तो प्रथम आणविक बिजली-घर में पैदा होने वाली बिजली महंगी पड़ेगी। किन्तु यह सम्भव है कि भविष्य में आणविक ऊर्जा से पैदा होने वाली बिजली अन्य साधनों से पैदा होने वाली बिजली के मुकाबले में महंगी न पड़े। यह बात तो निश्चित है ही कि तेलों, गैसों और कोयले जैसे ईंधनों के भूगर्भ-स्थित प्राकृतिक भंडार में जो नित्य-प्रति कमी आती जा रही है वह आणविक भट्टी में प्रयुक्त होने वाले ईंधन से कुछ-न-कुछ अवश्य पूरी होने लगेगी।

अभी यूरेनियम-२३५ ही एक ऐसा आणविक ईंधन है जिसे मनुष्य काम में ला सका है। किन्तु हैनफ़ोर्ड वाली तथा अन्य कई आणविक भट्टियों में यूरेनियम-२३८ से प्लूटोनियम

नामक मानव-निर्मित तत्त्व का निर्माण होता है, और इस प्लूटोनियम को विदीर्ण करके उसमें से ऊर्जा मुक्त की जा सकती है।

एक ऐसी विधि पूर्ण की जा रही है जिससे कुछ आणविक भट्टियां जितना ईंधन खपाएंगी उससे अधिक ईंधन उत्पन्न कर देंगी। यह एक बहुत धीमा प्रक्रम है। ऐसी भट्टियों में ईंधन सम्भवतः ५ वर्ष तक या इससे भी अधिक समय तक 'पकता' रहेगा, तब कहीं जाकर नए ईंधन का उत्पादन ईंधन की खपत से अधिक या उसके बराबर हो पाएगा।

थोरियम नामक एक तत्त्व भूगर्भ में यूरेनियम की अपेक्षा अधिक परिमाण में मिलता है। आणविक ईंधन के रूप में थोरियम भी संसार के ईंधन-भंडार में वृद्धि करेगा, क्योंकि उसे आणविक भट्टी में पकाकर यूरेनियम-२३३ में परिणत किया जा सकता है।

एक दिन सम्भवतः आणविक ऊर्जा सारे संसार को बिजली प्रदान करने लगेगी। तब विदीर्ण होते हुए अणुओं से ऐसे प्रदेशों में भी बिजली मिलने लगेगी जहां आज किसी प्रकार का भी ईंधन उपलब्ध न होने के कारण बिजली का उत्पादन नहीं हो पाता। उत्तर-ध्रुव के ग्रीनलैंड तथा अलास्का जैसे प्रदेशों में सम्भवतः छोटी आणविक भट्टियां पेटियों में बन्द करके हवाई-जहाज़ों द्वारा दूरस्थ, दुर्गम स्थानों में, सैनिक कैम्पों में भेजी जा सकेंगी। अन्य छोटी भट्टियां संकट-ग्रस्त क्षेत्रों में भेजी जाया करेंगी ताकि वहां वे लोगों को बिजली

प्रदान कर सकें। 'तैरती हुई' भट्टियों का निर्माण भी सम्भव है।

एक नितान्त भिन्न विधि से भी अणुओं से बिजली प्राप्त की जा रही है। सारे प्रयोगात्मक आणविक बिजली-घर, जिनमें विशाल परिमाण में बिजली का उत्पादन होगा, आणविक ऊर्जा को उष्मा में परिणत करते हैं, फिर उष्मा को भाप बनाने के लिये काम में लाते हैं और फिर उस भाप से बिजली का उत्पादन होता है। किन्तु अब एक छोटी-सी आणविक बैटरी बनाई गई है जिसमें आणविक भट्टियों की राख में से निकले हुए रेडियो-सक्रिय स्ट्रॉन्टियम का उपयोग होता है। यह अंगूठे जितनी बैटरी रेडियो-सक्रियता से, सीधे तौर पर, एक वाट का १०-लाखवां भाग बिजली पैदा करती है। १०० वाट का एक बल्ब जलाने के लिये ऐसी १० करोड़ बैटरियां चाहिएं। किन्तु इस बैटरी का आविष्कार बहुत महत्त्वपूर्ण है।

उपरोक्त प्रकार की एक आणविक बैटरी में इतनी शक्ति होती है कि वह २० फुट दूर रखे हुए टेलीफ़ोन-रिसीवर अथवा कर्ण-फ़ोन (Earphone) में आवाज़ पैदा कर सकती है। बिजली की इतनी थोड़ी मात्रा व्यर्थ-सी प्रतीत होती है, किन्तु यह बैटरी उस दिन का उद्घोष कर रही है जब केवल श्रवण-शक्ति-सहायक-यंत्र, हाथ की घड़ियां, सिग्नल-नियंत्रक तथा रेडियो आदि ही नहीं, वरन् बड़े-बड़े यंत्र भी आणविक शक्ति से चलेंगे। चूंकि रेडियो-सक्रिय स्ट्रॉन्टियम २० वर्ष तक इलैक्ट्रोन मुक्त करता रहता है, इसलिये आणविक बैटरी इस अवधि

तक बिना दोबारा चार्ज किये काम दे सकती है। इसलिये इस प्रकार की बैटरी का आविष्कार और निर्माण बिजली-उत्पादन के क्षेत्र में एक महत्त्वपूर्ण चरण है।

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि आणविक बैटरी का आविष्कार विज्ञान के इतिहास की एक महान् घटना है। सम्भवतः आणविक भट्टियों के साथ-साथ आणविक बैटरी भी संसार को बिजली प्रदान करने वाले एक नए महत्त्वपूर्ण स्रोत के रूप में बिजली के क्षेत्र में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान ग्रहण करेगी। केवल समय ही बतलाएगा कि नियंत्रित अणु शान्ति-काल में शक्ति-स्रोत के रूप में मनुष्य-जाति के लिये क्या-क्या चमत्कारपूर्ण कार्य करेंगे।

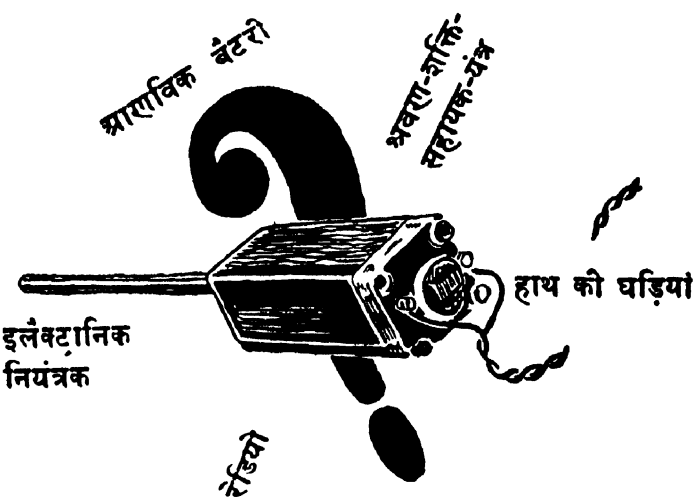

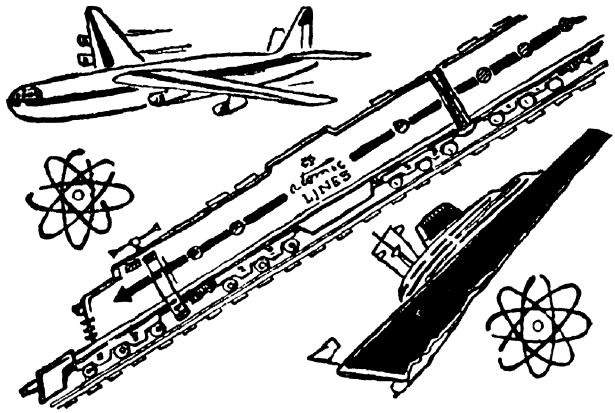

: ११ :

अणु और यातायात

कंचे के आकार का एक आणविक गोली में इतनी ऊर्जा होती है कि वह एक मोटर को पृथ्वी के चारों ओर चार बार दौड़ा सकती है। किन्तु यह बात सुनकर आप यह न सोचने लग जाएं कि पैट्रोल का खर्च बचाने के लिए तथा बार-बार उसे मोटर में भरने के झंझट से छुटकारा पाने के लिए अगले साल आप अणु-ऊर्जा-चालित गाड़ी खरीद लेंगे। अभी तक कोई व्यक्ति इतने थोड़े-से आणविक ईंधन में से भी पूरी ऊर्जा उन्मुक्त करने में सफल नहीं हुआ है। अभी तक मानव ने अणु के सम्बन्ध में जितना अनुसंधान किया है उसके आधार पर

अणु-ऊर्जा से चलने वाली मोटर बनाई जाए तो वज़न में वह पचास टन से कम की नहीं होगी। सबसे बड़ी कठिनाई ऐसी मोटर बनाने में यह होगी कि आणविक भट्टी से ड्राइवर को बचाने के लिए दोनों के बीच में कम-से-कम छः फुट मोटी कंकरीट की ढाल खड़ी करनी पड़ेगी।

किन्तु आणविक ऊर्जा से चलने वाली गाड़ियों आदि से आने-जाने का विचार केवल स्वप्न नहीं है। सिगार की शक्ल की 'नौटिलस' नामक एक अमरीकी सबमैरीन (पनडुब्बी) का इंजन ऐसा बनाया गया है कि उसे अणु-ऊर्जा द्वारा चलाया जाता है। यह सबमैरीन सदा इस बात के लिए विख्यात रहेगी कि यातायात की चीज़ों में यह पहली चीज़ है जिसमें आणविक भट्टी लगी है। १७ जनवरी, सन् १९५५ को पहले-पहल आणविक ऊर्जा ने पानी के अन्दर इस सबमैरीन को चालित किया। छः वर्ष पूर्व आणविक ऊर्जा से चलने वाले इंजन का अस्तित्व केवल स्वप्न और आशा के संसार में था। किन्तु परिश्रमी एडमिरल हाइमन जी० रिकोवर के निर्देशन में इस आशा और स्वप्न ने अन्ततः इस आणविक जहाज़ का रूप धारण कर लिया जो संसार के एक कोने से दूसरे कोने तक, ईंधन को दोबारा भरे बिना, जा सकता है।

'नौटिलस' में आणविक शक्ति से चलने वाला ऐसा इंजन लगा हुआ है जो अतलांतक महासागर को बड़ी तेज़ रफ़्तार से पानी के नीचे-नीचे पार कर सकता है। यह सबमैरीन ईंधन दोबारा लिए बिना सारी पृथ्वी का चक्कर लगा सकती है। इसकी अधिकतम रफ़्तार अभी एक गुप्त भेद है, किन्तु

निश्चित रूप से वह २० या २५ नॉट[1] प्रति घंटे से अधिक है। किसी व्यक्ति ने मज़ाक में कहा था कि आणविक सबमैरीन पानी के नीचे-नीचे चार साल तक चलती रह सकती है, और उसके बाद भी उसे केवल इतने समय के लिए ऊपर आने की आवश्यकता होगी कि उसमें नए कर्मचारी भर्ती करके पुराने कर्मचारियों के स्थान पर काम पर लगा दिए जाएं ताकि पुराने कर्मचारी आराम कर सकें। कुछ भी हो, किन्तु यह बात निश्चित है कि 'नौटिलस' पुरानी सबमैरीनों से कहीं अधिक उत्तम है।

जिन लोगों ने आणविक सबमैरीन तैयार करने में लगभग अथक तथा निरन्तर उद्यम किया, उनकी कहानी अलौकिक साहस और चमत्कारिक मानसिक शक्ति की कहानी है। यह कठोर परिश्रम, और निरन्तर परिश्रम की कहानी है, क्योंकि इसमें समय की सबसे जटिल समस्या थी। जिन लोगों को इस प्रकार के इंजन के निर्माण से सम्बन्धित समस्याओं का अनुमान नहीं है, उन्हें छः वर्ष का समय शायद बहुत लम्बा लगेगा। किन्तु कुछ बड़े-बड़े वैज्ञानिकों का अनुमान था कि इस कार्य के सम्पन्न होने में ५० वर्ष लगेंगे। तब यह मानना पड़ता है कि जब यह कार्य ६ वर्ष में सम्पन्न हो गया तो वास्तव में इसमें बहुत ही थोड़ा समय लगा।

इंजन के कल-पुर्ज़े अलग-अलग वर्कशापों में नहीं बनवाए

---

१. समुद्र में दूरी नापने का पैमाना। एक नॉट ६०८० फुट के बराबर होता है।

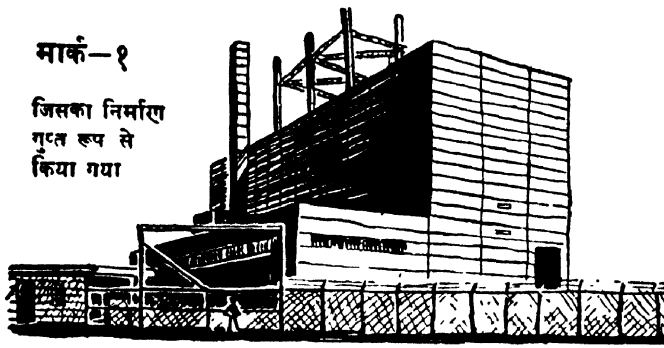

जा सकते थे। प्रत्येक पुर्ज़े का डिज़ाइन नया बनाना पड़ता था। किसी भी अन्य जहाज़ी इंजन के किसी भी कल-पुर्ज़े की नक़ल नहीं की जा सकती थी, क्योंकि प्रस्तावित इंजन तो अपने ढंग का पहला ही इंजन था। प्रथम सबमैरीन इंजन, जिसका नाम मार्क—१ रक्खा गया, इडाहो के रेगिस्तान में बनाया गया था और इसके निर्माण को पूर्णतया गुप्त रक्खा गया था।

इडाहो प्रान्त के एक रेगिस्तानी भाग में कंकरीट का बना हुआ एक विशाल भवन खड़ा हुआ है जिसमें कोई खिड़की और रोशनदान नहीं है, और जिसकी दीवारें १० फुट मोटी हैं। यह भवन आठ मंज़िल ऊंचा है। इस भवन के अन्दर कारीगरों ने सबमैरीन के पेटे (निम्न-भाग) और पहलुओं को जोड़ा। यहां पर यह बता देना आवश्यक है कि इस स्थान से, जहां सबमैरीन का प्रथम आणविक इंजन तैयार किया गया था, समुद्र का निकट से निकट किनारा १००० मील से कम दूरी पर नहीं था। इंजन की परीक्षा के लिए रेगिस्तान के

बीच में एक छोटा-सा 'समुद्र' बनाया गया, जिसका व्यास ५० फुट और गहराई ४० फुट थी। एक स्विच दबाते ही इंजन में लगी हुई आणविक भट्टी में से ऊर्जा मुक्त की जा सकती थी।

इस स्थान से २५०० मील दूर, कनैक्टीकट राज्य के 'ग्रोटन' नामक स्थान पर 'नौटिलस' नामक सबमैरीन बनाई जा रही थी। योजना यह थी कि मार्क-१ इंजन के प्रत्येक कल-पुर्ज़े की आकृति के अनुसार दूसरा पुर्ज़ा तैयार करके वहां भेजते रहें ताकि वहां उसी प्रकार का दूसरा इंजन बनता जाए। उस स्थान पर, समुद्र के किनारे, एक शिप-यार्ड (जहाज़ बनाने का कारखाना) था। उस शिप-यार्ड का एक भाग चारों ओर से घेर लिया गया था और उसका उपनाम 'साइबेरिया' रख दिया गया था।

इंजन के कल-पुर्ज़ों के सम्बन्ध में अमरीका के २३ विभिन्न राज्यों में अनुसंधान कार्य हुआ और इन कल-पुर्ज़ों की जांच-पड़ताल एवं परीक्षा तथा आवश्यक संशोधन के बाद

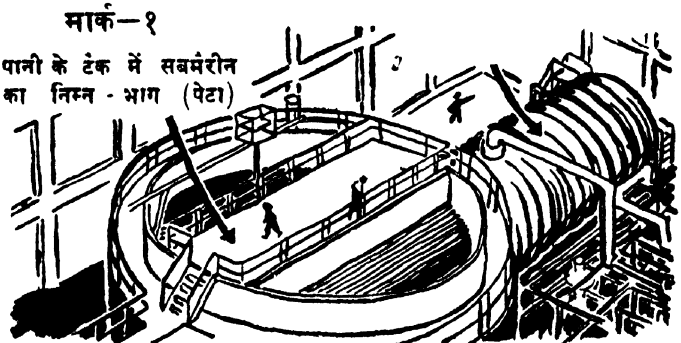

उन्हें जोड़कर मार्क-१ इंजन बनाया गया। फिर प्रत्येक कल-पुर्ज़े की हू-ब-हू नक़ल तैयार की गई और इन कल-पुर्ज़ों को २५०० मील दूर लेजाकर 'नौटिलस' में फ़िट कर दिया गया। इस इंजन का नाम मार्क-२ रक्खा गया। यही प्रथम आणविक सबमैरीन को चलाने वाला प्रथम इंजन था।

इस इंजन के निर्माण के सिलसिले में नौ-सेना-अध्यक्ष रिकोवर तथा नौ-सेना के कर्मचारियों, 'एटॉमिक इनर्जी कमीशन', 'वैस्टिंगहाउस इलैक्ट्रिक कारपोरेशन' तथा 'इलैक्ट्रिक बोट हाउस' को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा वे इतनी जटिल, टेढ़ी और कठिन थीं कि उनका आसानी से अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता।

उदाहरण के तौर पर किसी व्यक्ति ने सुझाव दिया कि मार्क-१ इंजन में ज़िरकोनियम नामक धातु को काम में लाया जाए। यह एक ऐसी धातु है जो अत्यन्त तीव्र तापमान को सहन कर सकती है, न्यूट्रोनों का अवशोषण नहीं करती, तथा शृंखलात्मक प्रतिक्रिया को धीमा कर देती है। किन्तु यह एक दुर्लभ धातु है। जब पहले-पहल इस पर परीक्षण किये गए तो एक पौंड धातु पर पांच लाख डालर खर्च आया। फिर, दूसरी कठिनाई यह थी कि सारे संयुक्त-राज्य अमरीका में इस की कुल-मिलाकर केवल इतनी मात्रा उपलब्ध थी कि वह जूतों के एक डब्बे में आ जाए।

ज़िरकोनियम को वैल्ड करने (टांका लगाने) की भी समस्या थी। अधिकांश धातुओं की भांति ज़िरकोनियम भी न्यूट्रोनों का अवशोषण नहीं करता, किन्तु जब खुली हवा में इसमें

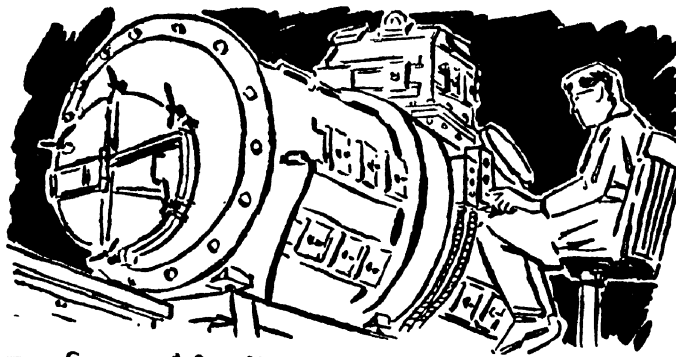

आणविक सबमरीन में ज़िरकोनियम धातु में टांका लगाया जा रहा है

टांका लगाया जाता है तो यह आक्सीजन और नाइट्रोजन गैसों का अवशोषण कर लेता है और इसमें आग लग उठती है। इस समस्या को सुलझाने के लिए वैस्टिंगहाउस कम्पनी के एंजीनियरों ने एक निर्वात (Vacuum) टैंक बनाया ताकि ज़िरकोनियम को इस टैंक के अन्दर रखकर उसमें टांका लगाया जा सके। यह टैंक लोहे के फेफड़े जैसा लगता है।

रेडियो-सक्रियता की भी एक समस्या थी। बहुत से परीक्षण सात फुट मोटी दीवार के पीछे करने पड़े। एक विशेष डिज़ाइन का परिदर्शी-यंत्र (Periscope) तैयार किया गया जिसकी सहायता से कर्मचारी अपने द्वारा दीवार से पीछे की जाने वाली क्रियाओं को देख सकता था। ये क्रियाएं पंजे-जैसे एक यांत्रिक हाथ की सहायता से की जाती थीं जो दीवार के पीछे रखी हुई चीज़ों को उठाता-रखता था। कुछ अन्य क्रियाएं १२ फुट गहरे पानी के नीचे स्थित एक जल-मग्न

'कारखाने' में की जाती थीं। इस तरह कर्मचारी कुछ रेडियो-सक्रिय पुर्जों पर सुरक्षा-पूर्वक क्रियाएं कर सकते थे और उन्हें देख सकते थे।

विशेष प्रकार के ऐसे श्वास-सहायक यंत्र बनाए गए कि जब तक सबमैरीन पानी के अन्दर रहे, उनसे आक्सीजन की उपलब्धि निरन्तर, लम्बे समय तक, होती रहे, और सांस से बनने वाली कार्बन-डाइआॅक्साइड गैस का लम्बे समय तक बाहर निकास किया जा सके।

श्वास-सहायक यंत्रों की जांच करने के लिए, तथा यह देखने के लिए कि वे मानव-निर्मित वायु में ६-सप्ताह तक किस तरह जीवित रहेंगे, परीक्षक-कर्मचारियों के एक दल को सबमैरीन में नियुक्त किया गया। २२ नाविकों और एक डाक्टर ने ६ सप्ताहों तक इन विशेष श्वास-सहायक यंत्रों की सहायता से एक सबमैरीन में डेरा डाले रखा। जब वे बाहर निकले तो वे बिल्कुल भले-चंगे थे।

आणविक सबमैरीन के इंजन का प्रत्येक पुर्ज़ा अत्यंत पूर्णता के साथ नितान्त दोषरहित बनना चाहिए, क्योंकि एक बार काम में आने के बाद उन्हें कोई व्यक्ति मरम्मत करने के लिये छू नहीं सकता। इस कारण से प्रत्येक पुर्ज़े को बनाने में अत्यधिक सावधानी बरती गई।

एक प्रश्न यह उठा कि मान लीजिये सबमैरीन समुद्र में जा रही है और उसमें सहसा कुछ गड़बड़ हो जाती है तो उस समय क्या किया जाए ? यह एक और समस्या थी जिसका अन्ततः हल निकाला गया।

यह प्रबन्ध किया गया कि ऐसी आकस्मिक स्थिति उत्पन्न होने पर सावधान करने वाली एक लाल रोशनी जलने लगेगी और हैफ़नियम नामक पदार्थ के डंडे आणविक भट्टी में स्वतः गिर जाएंगे। यह पदार्थ न्यूट्रोनों का अवशोषण कर लेता है जिससे शृंखलात्मक प्रतिक्रिया रुक जाती है और भट्टी ठप्प हो जाती है। उसके बाद सबमैरीन बैटरियों या एक छोटे-से डीज़ल-इंजन की सहायता से अपनी यात्रा जारी रख सकती है। ऐसी ही आकस्मिक संकटकालीन स्थितियों के लिये सबमैरीन में बैटरियों तथा डीज़ल-इंजन का प्रबन्ध रखा गया है।

रेडियो-सक्रिय पानी यदि रिस गया तो नाविकों तथा आस-पास के पानी में चलने वाले जहाजों के लिए संकट उत्पन्न कर सकता है। इसलिये पाइपों, वाल्वों तथा दूसरे कल-पुर्ज़ों को अत्यधिक मज़बूत बनाया गया। उनके जोड़ इतने पक्के लगाए गए कि सबमैरीनों को तोड़ने और डुबोने के लिये जो विशेष प्रकार के बम (Depth-charges) पानी में फेंके जाते

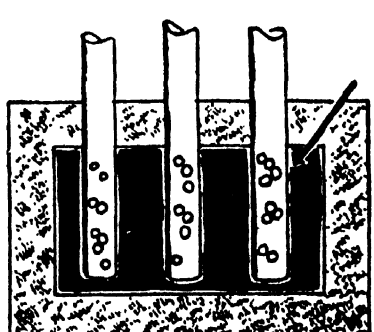

डंडे न्यूट्रोनों का अवशोषण करके शृंखलात्मक प्रतिक्रिया को रोक देते हैं

हैं, उनका धक्का भी वे सहन कर सकते हैं। ठंडा करने वाले यंत्रों के जोड़ इतने पक्के लगाए गए हैं कि ५०० वर्षों में उनमें से रिसने वाले रेडियो-सक्रिय पानी को यदि एकत्रित किया जाए तो उससे एक अंगुश्ताना भी शायद न भर सके। अणु-शक्ति से चलने वाली इस सबमैरीन में काम करने वाले कर्मचारियों, नाविकों आदि के बचाव के लिए जो अनेक उपाय काम में लाए गए हैं और सावधानियां बरती गई हैं उनमें से केवल कुछेक ही उदाहरण के रूप में ऊपर दी गई हैं।

प्रारम्भ से ही कोई भी व्यक्ति इस बात को निश्चित रूप से नहीं मानता था कि अणुओं को जहाज़ चलाने के लिये काम में लाया जा सकता है। ऐसा आश्चर्यजनक कार्य इससे पहले सम्पन्न नहीं हुआ था।

भट्टी का वह भाग, जिसमें यूरेनियम जलता है, उसका सब से अधिक महत्त्वपूर्ण तथा केन्द्रीय भाग है। इस के कारण कर्मचारियों के लिए रेडियो-सक्रियता से उत्पन्न होने वाला खतरा तो था ही, साथ ही यह भी डर था कि कहीं ऐसा न हो जाए कि इसमें से ऊर्जा अत्यधिक तीव्र गति से मुक्त हो जाए और भट्टी क़ाबू से बाहर हो जाए।

३१ मार्च, सन् १९५३ को मार्क-१ इंजन में न्यूट्रोन इतनी मात्रा में मुक्त किये गए कि उन्होंने शृंखलात्मक प्रतिक्रिया प्रारम्भ कर दी। यही कार्य अमरीका की विभिन्न आणविक भट्टियों में हो रहा था, किन्तु प्रश्न यह था कि क्या आणविक भट्टी भाप की टर्बाइनों को चालित कर सकेगी? ३१ मई, सन् १९५३ को रेगिस्तान में बने हुए कृत्रिम 'समुद्र'

में आणविक सबमैरीन को चालू किया गया। एक वाल्व को घुमाया गया, आणविक भट्टी में उष्मा उत्पन्न हुई, और टर्बाइन काम करने लगे! प्रोपैलर-शाफ़्ट चक्कर लगाने लगे और उसी क्षण आणविक यातायात के युग का मानो जन्म हो गया।

'नौटिलस' में पानी भट्टी से उष्मा ग्रहण करता है और उसे एक बॉयलर में ले जाता है, जहां वह पानी, जो रेडियो-सक्रिय नहीं होता, गरम होकर भाप में बदल जाता है। यह

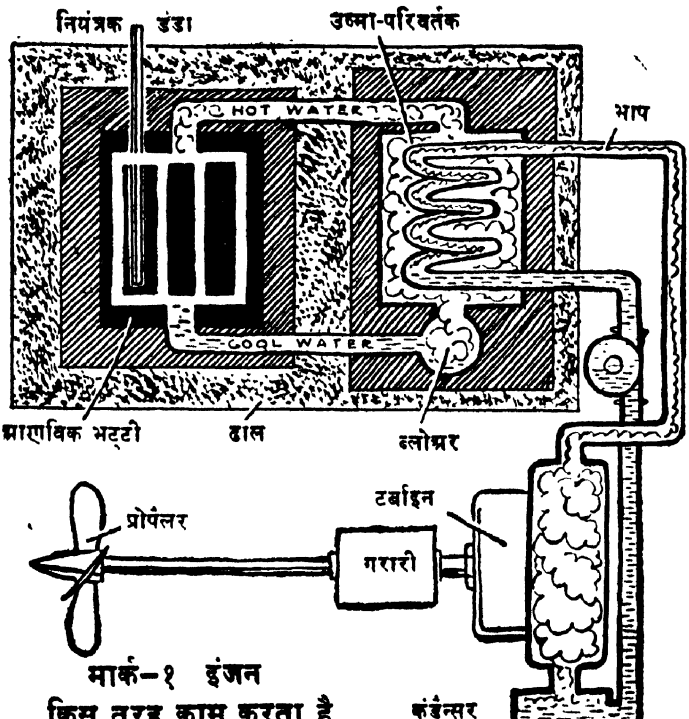

मार्क–१ इंजन
किस तरह काम करता है

भाप टर्बाइनों को चलाती है और टर्बाइन प्रोपैलर-शाफ़्टों को चालित करते हैं।

यदि आप 'नौटिलस' को बाहर से देखें तो आप उसे अन्य सबमैरीनों से बहुत भिन्न नहीं पाएंगे। हां, उसकी आकृति अधिक ठूंठदार, अग्रभाग भद्दा और गोल-मटोल तथा निम्न-भाग अत्यधिक चौड़ा अवश्य है। इन विशेषताओं, तथा, साथ ही, आणविक इंजन द्वारा प्रदत्त महान् शक्ति और तीव्र गति के कारण 'नौटिलस' पानी के नीचे अन्य सबमैरीनों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह यात्रा कर सकती है।

सबमैरीन के अन्दर नाविक तथा कर्मचारी खाने की मेज़ों पर ताज़ा जमाए हुए खाद्य-पदार्थों का आनन्द ले सकते हैं। ये मेज़ें इस तरह बनाई गई हैं कि काम में लाने के बाद इन्हें ऊपर की ओर मोड़कर छत से बांध दिया जाता है। सब-मैरीन के अन्दर एक अलग कमरे में खेलों का प्रबन्ध है, दोहरी

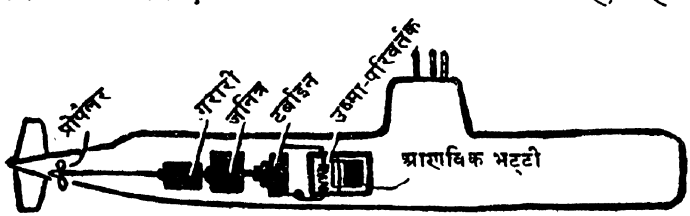

आणविक सबमैरीन

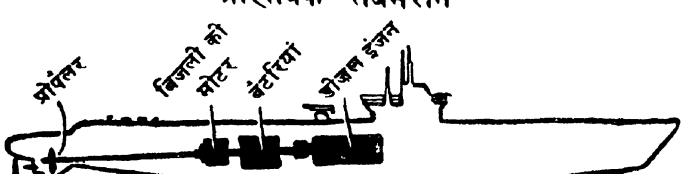

साधारण सबमैरीन

सीढ़ी है, प्रत्येक कर्मचारी के लिए अलग शौचालय है और सारी सबमैरीन में बिजली की नए ढंग की ट्यूबें लगी हुई हैं। सोने के कमरों में तख्तों पर रबड़ के गद्दे पड़े हुए हैं और ये कमरे दिन मे आराम करने के स्थान में बदल दिये जाते हैं। सबमैरीन की दीवारें रंगीन है। इन सब सुविधाओं और उपकरणों के कारण यह आणविक सबमैरीन पुराने ढंग की सबमैरीनों की अपेक्षा, जिन की दीवारों पर सफेद रोगन किया हुआ होता है और जिनमें तीव्र चमक वाले बल्ब लगे हुए होते हैं, अधिक आरामदायक है तथा देखने में अधिक सुन्दर लगती है। पुराने ढंग की सबमैरीनों के पेटे में दो तले होते हैं जिनके बीच में सबमैरीन के लिए तेल भरा रहता है। किन्तु 'नौटिलस' को किसी प्रकार का तेल आदि ले जाने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि उसका ईंधन यूरेनियम है, जिसकी एक बड़ी गेंद जितनी मात्रा एक महीने के लिये काम दे जाती है। आणविक भट्टी और उसकी सीसे की ढाल, इंजन तथा प्रोपैलर आदि सब मिलकर 'नौटिलस' का लगभग एक-तिहाई भाग घेरते हैं, इसलिये अन्य, अर्थात् साधारण, सबमैरीनों की अपेक्षा उसमें नाविकों तथा कर्मचारियों के काम में आने के लिये अधिक स्थान बच गया है।

'नौटिलस' ३० सितम्बर, सन् १९५५ को अमरीकी नौसेना में प्रथम आणविक जहाज़ के रूप में सम्मिलित हो गया। उसके बाद एक दूसरी सबमैरीन का, जिसका नाम सी-वुल्फ़ (Sea-wolf) रखा गया है, डिज़ाइन तैयार किया गया है। इस डिज़ाइन में आणविक ऊर्जा का और भी अधिक अच्छा

उपयोग सोचा गया है। हो सकता है कि भविष्य में ऐसी सबमैरीनें बनने लगें कि मानव कुछ ही वर्ष पहले जिन बातों की कल्पना कर पाया था वे उनसे भी आगे बढ़ जाएं।

अणु-शक्ति से चलने वाले वायुयानों का निर्माण करने के लिए भी अमरीका में कई स्थानों पर कार्य हो रहा है। परन्तु इससे पहले कि अणु-ऊर्जा से चलने वाले वायुयान आकाश में उड़ने लगें, कई समस्याओं को हल करना होगा। वैज्ञानिक लोग इन समस्याओं का हल ढूंढने के लिये कठोर परिश्रम कर रहे हैं।

आणविक आकाश-यात्रा को सम्भव बनाने का एक उपाय यह लगता है कि वायुयानों में ऐसे प्रोपैलर लगाए जाएं जो टर्बाइनों से चालित हों और वे टर्बाइन भाप द्वारा चलाए जाएं। वह भाप या तो सीधे तौर पर आणविक भट्टी से तैयार की जाए, या फिर अत्यन्त गर्म हवा या पिघली हुई धातुओं से तैयार की जाए, और हवा को गर्म करने या धातुओं को पिघलाने का काम आणविक भट्टी से लिया जाए।

आणविक भट्टी से आणविक वायुयान में वही काम लिया जाएगा जो जैट वायुयानों में, उष्मा उत्पन्न करने के लिये, 'ईंधन-दाहक' करते हैं। आणविक भट्टी से उष्मा को ले जाने का काम वायु या कोई द्रव करेगा।

यदि रेडियो-सक्रियता का ख़तरा दूर करने की जटिल समस्या का हल निकल आए तो आणविक वायुयानों के निर्माण-कार्य में बड़ी आसानी से प्रगति हो जाए। आणविक वायुयान में किसी ऐसी 'ढाल' की आवश्यकता है जो इतनी

हल्की हो कि वह वायुयान की उड़ान में बाधा न डाल सके। आम-तौर पर ढाल का काम सीसे या कंकरीट से लिया जाता है, और ये दोनों वस्तुएं बहुत अधिक भारी हैं।

जब गैसोलीन से चलने वाले वायुयान धरती पर उतरते हैं तो उनके ईंधन का भार उड़ान के समय के ईंधन के भार की अपेक्षा बहुत कम होता है। किन्तु आणविक वायुयान में भट्टी से बचाने के लिये जो 'ढाल' होगी उसका वज़न वायुयान के उतरते और चढ़ते समय वही रहेगा। यह भी एक समस्या है जिसका हल ढूंढ़ना आवश्यक है।

रेडियेशन को वश में करने के लिए जो प्रयत्न किये जा रहे हैं या भविष्य में किये जाएंगे, वे कई कारणों से करने योग्य ही हैं। उदाहरण के तौर पर, आणविक वायुयान बिना रुके पृथ्वी के चारों ओर कई बार चक्कर लगा सकेगा। गैसोलीन से चलने वाले वायुयानों में इस ईंधन की खपत की गणना साधारणतया "इतने हज़ार पौंड प्रति-घंटा" की दर से की जाती है। किन्तु आणविक भट्टी की शक्ति से चलने वाले वायुयान में ईंधन की खपत की गणना "इतने पौंड प्रतिदिन" के दर से की जाएगी।

वायुयान के लिए उपयुक्त आणविक भट्टी बनाने की योजना पर कार्य हो रहा है, किन्तु यह मार्ग लम्बा और जटिल समस्याओं से भरा हुआ है।

जो जहाज़ पानी के नीचे-नीचे चलने की बजाय पानी के ऊपर चलते हैं वे आणविक ऊर्जा के उपयोग के लिये अधिक उत्तम माध्यम हैं। अमरीका की नौ-सेना सम्भवतः निकट

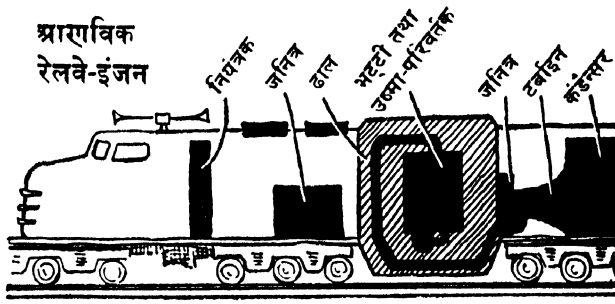

अग्र-भाग

भविष्य में वायुयान-वाहक (एयर-क्राफ्ट कैरीयर) जहाज़ों को अणु-ऊर्जा की सहायता से चलाने लगेगी। किन्तु व्यापारिक जहाज़ को आणविक ऊर्जा से चलने वाले अत्यन्त महंगे इंजनों के लिए अभी कुछ दिन और ठहरना पड़ेगा। शायद कुछ समय के बाद सस्ती आणविक भट्टियां बनने लगें। तब साधारण जहाज़ भी इस शक्ति से चलने लगेंगे।

रेलवे इंजनों को भी आणविक-ऊर्जा की शक्ति से चलाने का प्रयत्न किया जा रहा है। उटाह विश्व-विद्यालय में भौतिकी के प्राध्यायक डाक्टर लाइल बी० बोर्स्ट अपने कुछ सहयोगी वैज्ञानिकों के साथ मिलकर इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। पांच रेलवे कम्पनियों तथा ६ औद्योगिक संस्थानों में परीक्षण और अध्ययन करके इस दल ने एक रिपोर्ट तैयार की है जिसमें आणविक रेलवे-इंजन के कुछ नक्शे दिये गए हैं और साथ ही उन पर सम्भावित खर्च की तालिका भी दी गई है। आणविक ऊर्जा से बचाव के उपायों पर भी उसमें प्रकाश डाला गया है।

इस रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया है कि एक रासायनिक

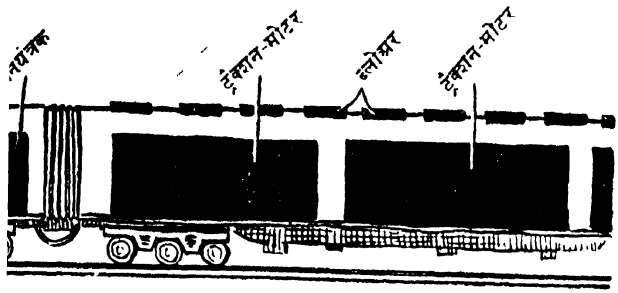

पिछला भाग

द्रव्य को, जिसमें यूरेनियम मिला हुआ होगा, पानी में घोलकर इंजन में ईंधन के तौर पर काम में लाया जाए। इस घोल का नाम वैज्ञानिकों ने 'सूप' रक्खा है। यह बहुत-कुछ पानी जैसा ही दिखाई देगा, केवल इसमें थोड़ा-सा पीलापन होगा, किन्तु होगा यह रेडियो-सक्रिय, और यात्रियों तथा इंजन-कर्मचारियों को इसकी रेडियो-सक्रियता से बचाने के लिए ४ फुट मोटी ढाल की आवश्यकता पड़ेगी।

भट्टी में उत्पन्न हुई उष्मा से भाप गर्म की जाएगी, यह भाप बिजली के जनित्रों को चलाएगी, और ये जनित्र इंजन के पहियों को गतिमान करेंगे।

एक परीक्षणात्मक आणविक इंजन पर १० लाख डालर से अधिक लागत आएगी। इस इंजन को चलाने का खर्च डीज़ल से कम पड़ेगा या नहीं—इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर करेगा कि इसमें काम आने वाले ईंधन, अर्थात् यूरेनियम, पर क्या खर्च पड़ेगा तथा विविध आणविक

समस्याओं को सुलझाने के लिए जो-जो साधन काम में लाए जाएंगे उन पर कितना खर्च पड़ेगा।

आप अणु-शक्ति से चलने वाले जहाज़ों या रेलगाड़ियों में यात्रा कर सकेंगे या नहीं—यह अभी एक प्रश्न ही है। यदि यह बात सम्भव हो भी, तो भी यह कोई नहीं जानता कि यह सम्भावना वास्तविकता का रूप कब धारण करेगी।

: १२ :

अणु और आप

आणविक ऊर्जा का हमारे भावी जीवन में क्या स्थान होगा ? इस प्रश्न का उत्तर इतनी-सारी बातों पर निर्भर करता है कि उसका कोई ठीक और सीधा उत्तर अभी नहीं दिया जा सकता।

आज लगभग प्रत्येक व्यक्ति अणु-बमों द्वारा हो सकने वाले भयंकर नाश के सम्बन्ध में जानता है। इन बमों में अणुओं के विदारण अथवा संगलन से ऊर्जा की विशाल मात्रा उन्मुक्त हो जाती है। अमरीकी सरकार अणु-ऊर्जा सम्बन्धी कार्यक्रम के अन्तर्गत अपना अधिक ध्यान ऐसे अस्त्रों के निर्माण

की ओर दे रही है जिनकी सहायता से राष्ट्र की रक्षा की जा सके और अगले युद्ध को रोकने की आशा हो सके। साथ ही संसार के प्रजातंत्रीय राष्ट्र ऐसे मार्ग की तलाश में हैं जिस पर चलकर लोग वास्तविक शान्ति स्थापित कर सकें। वे आरणविक ऊर्जा के शान्तिकालीन उपयोग निकाल रहे हैं, जैसे कि इस पुस्तक में बतलाए गए हैं। आरणविक ऊर्जा की आश्चर्यजनक सम्भावनाएं और महान् सम्पन्नताएं आपके लिये हैं। वास्तव में वे सारे स्वतंत्र संसार के लिये हैं।

अनेक देशों के लोगों ने अणु-सम्बन्धी कार्य में योगदान दिया है, जिसके फलस्वरूप आज हम आणविक ऊर्जा से अनेक-विध काम ले रहे हैं। जर्मनी के श्री० हॉन और स्ट्रॉसमैन; लिज़े मेतनर जो नाज़ी जर्मनी से भागकर कोपेन्हेगन में रहने लग गए थे; फ़र्मी, आइन्स्टाइन और ज़िलर्ड, जो योरुप में पैदा हुए थे किन्तु नाज़ीवाद और फ़ासिज़्म से बचकर अमरीका चले गए थे—इन सबने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। सन् १९३९ के प्रारम्भ में प्रजातंत्रीय राष्ट्रों के भौतिकी-वेत्ताओं ने मिल-जुलकर अणुओं के नाभिकों में से ऊर्जा उन्मुक्त करने की समस्या पर अनुसंधान किये। फिर विश्व-युद्ध आरम्भ हो गया और उन्होंने स्वयं अपने परीक्षणों का प्रकाशन रोक दिया ताकि उनका यह ज्ञान नाज़ियों के हाथों में न पहुंच सके। उसके बाद उन्होंने अपना सारा ध्यान राजनीतिक और सैनिक क्षेत्रों की वैज्ञानिक समस्याओं को सुलझाने में लगा दिया ताकि प्रजातंत्रवाद जीवित रह सके और फलस्वरूप वैज्ञानिक लोग अपना कार्य करने के लिये स्वतंत्र रह सकें।

कुछ समय के बाद शृंखलात्मक प्रतिक्रिया उत्पन्न करने तथा अणु-बम बनाने में उन्हें जो सफलता मिली वह इसी कार्य का परिणाम था। "कुछ लोगों की धारणा है कि अणु-बम कभी नहीं बनने चाहिएं थे, न ही अणुओं में से कभी ऊर्जा उन्मुक्त की जानी चाहिए थी। आप इन लोगों से सहमत हैं या नहीं—यह बात आज कोई महत्त्व नहीं रखती। आज प्रश्न यह नहीं है कि "हम अणु-ऊर्जा चाहते हैं या नहीं ?" बल्कि प्रश्न यह है कि "हम अणु-ऊर्जा का सर्वोत्तम उपयोग किस तरह कर सकते हैं, और उसे संसार की भलाई के लिये किस तरह काम में ला सकते हैं ?"

"आणविक युग में जीवन व्यतीत करना एक महान् समस्या है। शायद आप सोचते होंगे कि अणु सम्बन्धी समस्याएं आपके बूते से परे तथा बहुत जटिल हैं, और आप उन्हें सुलझाने के लिए कुछ भी नहीं कर सकते। वास्तव में आणविक ऊर्जा की समस्या से निपटना किसी एक व्यक्ति या किसी एक दल की शक्ति से बाहर की बात है। यह तो प्रत्येक नागरिक की जिम्मेदारी है। आप में से प्रत्येक व्यक्ति निजी तौर पर तथा दूसरे लोगों के साथ मिलजुलकर आणविक ऊर्जा के शान्तिपूर्ण उपयोग निकालने के कार्य में सहयोग दे सकता है।

इस सहयोग के कुछ रूप नीचे दिए जा रहे हैं :—

आणविक योजनाओं की प्रगति से अपने आपको सूचित रखिए। इस पुस्तक को पढ़कर आप बहुत-से अन्य लोगों की अपेक्षा इस विषय पर अधिक जानकारी प्राप्त कर चुके हैं।

आप आणविक ऊर्जा के सम्बन्ध में अन्य लोगों से बातचीत करके इस महत्त्वपूर्ण विषय के प्रति उनके मन में दिलचस्पी पैदा कर सकते हैं।

विश्व के लिए अणु के शान्तिपूर्ण उपयोगों की जो योजना अमरीकी राष्ट्रपति श्री आइज़नहावर ने बनाई थी उसका प्रारम्भ १५ नवम्बर, सन् १९५४ को इस घोषणा के साथ हुआ कि अमरीकी सरकार यूरेनियम-२३५ का प्रथम अनुदान एक ऐसी अन्तर-राष्ट्रीय संस्था को दे रही है जो उपरोक्त योजना को कार्यान्वित करेगी। अगले ही दिन इंगलैंड ने भी अपना भाग इस संस्था को प्रदान कर दिया। विभिन्न देशों में इस आणविक ईंधन को परीक्षणात्मक आणविक भट्टियों में प्रयुक्त किया जाएगा और उनसे मूल्यवान और लाभदायक रेडियो-आइसोटोप उपलब्ध हो सकेंगे तथा अनुसंधान का कार्य आगे बढ़ सकेगा। साथ ही इस योजना से विभिन्न देशों के वैज्ञानिक अणु के विषय में प्रशिक्षण प्राप्त कर सकेंगे। यह उस योजना का श्रीगणेश है जिसका उद्देश्य पिछड़े हुए देशों का जीवन-स्तर ऊंचा उठाना है। इस योजना से सारा संसार लाभान्वित होगा।

अमरीकी सरकार के नेता कई तरह से आणविक ऊर्जा-सम्बन्धी ज्ञान का प्रसार कर रहे हैं। आप भी इस विषय का अध्ययन करने के लिए अपने नगर अथवा गांव में जिज्ञासु लोगों के दलों का संगठन कर सकते हैं। स्थानीय पुस्तकालयों तथा अन्य संस्थाओं में अणु-विषयक पदार्थ और सामग्री प्रदर्शित की जा सकती है।

जो कुछ आप आणविक ऊर्जा के सम्बन्ध में सोचेंगे, कहेंगे और करेंगे, उसका प्रभाव राष्ट्र के कर्णधारों तथा राजनीतिज्ञों पर पड़े बिना नहीं रह सकता। आणविक ऊर्जा के सम्बन्ध में दिलचस्पी लेकर आप एक ऐसे संसार में रहने के अधिकारी हो सकेंगे जिसमें शान्ति का साम्राज्य होगा और जो अणु से प्राप्त होने वाली शक्तिशाली ऊर्जा की कृपा से अधिक उन्नत, समृद्ध और सुखदायक हो जाएगा।

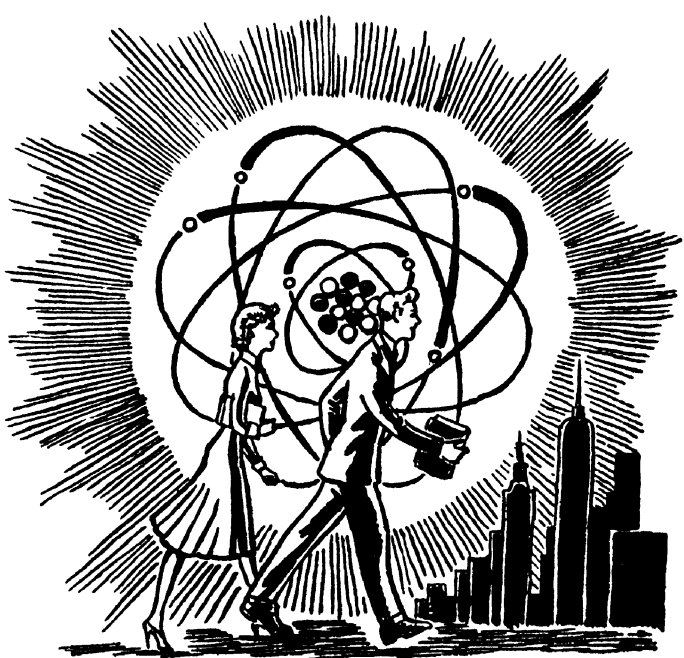

अणु-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों की व्याख्या

अणु : किसी मूल तत्त्व का वह सूक्ष्म से सूक्ष्म कण जो विद्यमान् रह सकता है।

आणविक ऊर्जा : वह ऊर्जा जो अणुओं को संगलन अथवा खंडन के प्रक्रम से विदीर्ण करके उनमें से मुक्त की जाती है।

नाभिक : अणु का केन्द्रीय भाग जिसमें प्रोटोन तथा न्यूट्रोन आदि कण होते हैं। अणु के इसी भाग को विदीर्ण करके उसमें से ऊर्जा निकाली जाती है।

खंडन : अणु के नाभिक का लगभग दो बराबर भागों में विदारण जिससे ऊर्जा मुक्त हो जाती है।

संगलन : बाहर से न्यूट्रोनों के समावेश से अणु के नाभिक का विस्तार। इस प्रक्रम में भी ऊर्जा मुक्त होती है।

न्यूट्रोन : हाइड्रोजन को छोड़कर शेष सभी तत्त्वों के अणुओं के नाभिकों में पाए जाने वाला एक प्रकार का कण।

इलैक्ट्रोन : एक सूक्ष्म कण जो अणु के नाभिक के चारों ओर चक्कर लगाता रहता है, या तारों में बिजली के रूप में दौड़ता है, या फिर वायु-मंडल में स्वतन्त्र रूप से विद्यमान् रहता है।

तत्त्व : द्रव्य की वह मूल अवस्था जिसमें उसे किसी भी रसायन से अन्य पदार्थों के रूप में परिणत नहीं किया जा सकता।

रेडियो-सक्रियता : जिन विशेष तत्त्वों के अणु एक स्थायी रीति के अनुसार टुकड़े-टुकड़े होकर टूटते रहते हैं, उनके आणविक नाभिकों का एक गुण।

आइसोटोप : किसी तत्त्व का एक रूप। किसी एक तत्त्व के आइसोटोप उसके शुद्ध अणुओं की भांति ही व्यवहार करते हैं, किन्तु वज़न में वे किंचित भारी होते हैं।

रेडियो-आइसोटोप : किसी तत्त्व का रेडियो-सक्रिय रूप।

गेइगर-मापी यंत्र : रेडियो-सक्रिय कणों का पता लगाने वाला एक यंत्र जिसमें बार-बार टिक-टिक का शब्द होने से किसी पदार्थ में रेडियो-सक्रियता के मौजूद होने का पता चल जाता है।

आणविक भट्टी : अणुओं को नियंत्रित गति पर विदीर्ण करने का एक साधन। इसमें यूरेनियम आदि रेडियो-सक्रिय तत्त्व ईंधन के रूप में काम में लाए जाते हैं।

यूरेनियम : एक भारी, सफेद रेडियो-सक्रिय धातु जो आणविक भट्टी में मुख्य ईंधन का काम देती है।

प्लूटोनियम : एक मानव-निर्मित तत्त्व जिसे न्यूट्रोनों के प्रहार से विदीर्ण किया जा सकता है।

थोरियम : एक रेडियो-सक्रिय तत्त्व जिससे आणविक भट्टी में प्रयुक्त होने वाला ईंधन तैयार किया जा सकता है।

संकेतक : एक रेडियो-सक्रिय आइसोटोप जिसके अस्तित्व

का पता गेइगर-मापी यंत्र से लगाया जा सकता है ।

ऐल्फ़ा किरणें : रेडियम तथा अन्य रेडियो-सक्रिय पदार्थों में से निकलने वाली तीन प्रकार की किरणों में से एक प्रकार की किरणें । एक ऐल्फ़ा कण में दो प्रोटोन तथा दो न्यूट्रोन आपस में मज़बूती से बंधे हुए होते हैं ।

बीटा किरणें : रेडियम आदि पदार्थों में से निकलने वाली दूसरी प्रकार की किरणें । बीटा के कण इलैक्ट्रोन होते हैं ।

गामा किरणें : रेडियम आदि पदार्थों में से निकलने वाली तीसरी प्रकार की किरणें । ये ऐक्स-रे जैसी होती हैं ।

इस पुस्तक में प्रयुक्त हिन्दी के मुख्य वैज्ञानिक शब्द तथा उनके समानान्तर अंग्रेज़ी शब्द

अणु	Atom
अनुसंधान	Research
अवशोषण	Absorb
अणु-विदारक यंत्र ऐटम-स्मैशर	Atom-smasher
आणविक भट्टी	Nuclcar Reactor
आइसोटोप	Isotope
आवर्धक शीशा	Magnifying Glass
इलैक्ट्रोन	Electron
उष्मा	Heat
ऊर्जा	Energy
ऐल्फ़ा किरणें	Alpha Rays
कण	Particles
कैन्सर	Cancer
खंडन	Fission
गिल्टी	Gland
गामा किरणें	Gamma Rays
गेइगर-मापक यंत्र	Geiger Counter
गैस	Gas
जनित्र	Generator
तन्तु	Tissue
थोरियम	Thorium
द्रव	Fluid
द्रव्य	Matter

न्यूट्रोन	Neutron
नाभिक	Nucleus
नियंत्रक	Control
निर्वात	Vacuum
प्रोटोन	Proton
पौजीट्रोन	Positron
प्रक्रम	Process
पदार्थ	Substance
प्रयोग, परीक्षण	Experiment
प्लूटोनियम	Plutonium
परिदर्शी	Periscope
फ़्लोरीन	Fluorine
बीटा किरणें	Beta Rays
मूल तत्व	Element
मानक	Standard
यूरेनियम	Uranium
रेडियो-सक्रियता	Radioactivity
रेडियेशन	Radiation
रसायन	Chemical
रसौली	Tumour
विदारण	Smash, Split
शृंखलात्मक प्रतिक्रिया	Chain Reaction
सूक्ष्म-दर्शी	Microscope
संगलन	Fusion
स्वतः-चलित	Automatic
स्ट्रॉन्टियम	Strontium
त्रिज्या	Radius